माघकृत

शिशुपालवध महाकाव्य

अनुवादक

श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण ११००

मुल्य——आठ रुपये

मुद्रक:——रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

काशकीय

संस्कृत महाकाव्यों में शिशुपालबध का विशेष महत्त्व है। संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों और पुराणों के हिन्दी अनुवाद की ओर सम्मेलन का ध्यान बहुत पहले से ही रहा है। सुप्रसिद्ध माघ कवि के शिशुपालवध महाकाव्य का भाषानुवाद पहले प्रकाशित हो चुका था, किन्तु कुछ त्रुटियों से देश के संस्कृत विद्वानों ने उसे विशेष पसन्द नहीं किया—इसी बात को ध्यान में रख कर पुनः इस काव्य के भाषानुवाद का कार्य सम्मेलन की साहित्य-समिति ने प्रसिद्ध मत्स्यमहापुराण और वायुपुराण के सफल अनुवादक श्री रामप्रतापजी त्रिपाठी शास्त्री को सौंपा। तदनुसार त्रिपाठीजी ने बड़े परिश्रम से यह अनवद्य अनुवाद प्रस्तुत किया है।

भाषानुवाद के साथ मूल श्लोक, सरल अर्थ एवं अलंकार और छन्दों का भी निर्देश विद्यार्थियों तथा संस्कृत के जिज्ञासु हिन्दी-प्रेमियों की सुविधा के लिए यथास्थान किया गया है। प्रबुद्ध शैली के इस भाव प्रवण अनुवाद से शिशुपाल-वध जैसा आकर महाकाव्य सर्वसाधारण के लिए सुबोध बन गया है।

इसी प्रकार मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का भी पूर्वापेक्षा सुन्दर भाषानुवाद भी सम्मेलन पुनः प्रकाशित करने की व्यवस्था कर रहा है। आशा है, हिन्दी जगत् संस्कृत के उच्चकोटि के ग्रन्थों का भी रसास्वादन कर अपनी ज्ञान पिपासा की तृप्ति कर सकेगा।

श्रीरामनाथ 'सुमन'
साहित्य मंत्री

मकर संक्रान्ति,

कविवर माघ और उनका कृतित्व

मध्यकालीन संस्कृत काव्य

विशाल संस्कृत साहित्य में जिन काव्यरत्नों की गणना सर्वोपरि की जाती है, वे केवल छ हैं, इनमें से तीन लघुत्रयी तथा तीन वृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। कविकुलगुरु कालिदास के तीनों काव्य रघुवंश, कुमारसंभव तथा मेघदूत—ये तीन लघुत्रयी तथा भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध तथा श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित—ये तीन वृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। यद्यपि इन छहों काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त अश्वघोष के सौन्दरानन्द तथा बुद्धचरित, भट्टि स्वामी के रावणवध अथवा भट्टिकाव्य, कुमारदास के जानकीहरण तथा रत्नाकर कवि के विशालकाय महाकाव्य हरविजय आदि की गणना भी संस्कृत के विख्यात काव्यों में की जाती है, किन्तु संस्कृत-साहित्य में इन काव्यों को उतनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हो सकी, जो ऊपर के छहों काव्यों को प्राप्त हुई है। इसका जो कुछ भी कारण रहा हो, किन्तु इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि ये सब काव्य काव्यगुणों में उन छहों काव्यों की कोटि के नहीं हैं। किसी में दुरूहता तथा वाग्जाल अधिक है तो किसी में भारतीय आर्यमर्यादा का सर्वथा प्रतिपालन नहीं है। बौद्ध तथा जैन संप्रदाय के धार्मिक ग्रन्थों के समान बौद्ध तथा जैन महाकवियों द्वारा रचित उनके काव्यों का भी उचित सम्मान नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यही रहा कि संस्कृत समाज में सदा से ब्राह्मणों का बाहुल्य रहा, चाहे किसी प्रतिक्रियावश ही क्यों न रहा हो, ब्राह्मणों ने इन काव्यों के पठन-पाठन की परम्परा में कोई सहयोग नहीं किया होगा। यही कारण है कि इन अन्यान्य महाकाव्यों का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सका, वे सदा उपेक्षित ही रहे और आज भी उपेक्षित-से ही हैं। आज भी संस्कृत की परीक्षा-पाठ्य-प्रणालियों में बहुत कम इन्हें स्थान दिया गया है और संस्कृत के पंडित-समाज में भी इनके पठन-पाठन की कोई सुचारु व्यवस्था नहीं है।

उपर्युक्त छहों काव्यों में सबसे दुरूह, जटिल तथा कवि-कल्पना की ऊँची उड़ानों से व्याप्त श्री हर्षकृत नैषधीयचरित तथा उसके बाद माघकृत शिशुपालवध है। भारवि के किरातार्जुनीय तथा कालिदास के तीनों काव्यों जैसी लोकप्रियता यद्यपि इन दोनों को भी नहीं प्राप्त है किन्तु विद्वत्समाज में इन दोनों महाकाव्यों की सर्वमान्य प्रतिष्ठा है।

दो

संस्कृत साहित्य ने हमारे इस विशाल देश में सहस्रों वर्षों तक लंबी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। अनेक साम्राज्यों, राज्यों तथा सामन्तों की छत्र-छाया में उसने अपने वैभव के सुनहले दिन बिताये हैं। संभवतः किसी भी प्राचीन भाषा को इतनी लंबी अवधि तक इतने विशाल भूखण्ड पर, इतने सुन्दर दिन देखने को नहीं मिले हैं। एक-एक सूक्ति तथा श्लोक पर सहस्रों सुवर्ण-मुद्राएं लुटानेवाले गुणग्राही सम्राटों तथा राजाओं ने शताब्दियों तक संस्कृत का मनुहार किया है। प्रकृति की सहचरी हमारे देश की धरती ने सहस्रों वर्षों तक अपनी समस्त संपदाओं, समृद्धियों, सुविधाओं तथा प्रेरणाओं से इसका संवर्धन किया है। देश का ऐसा कोई अंचल नहीं बचा है, जहाँ इसने अपने वैभव-विलास की वैजयन्ती न फहराई हो। विदेशी विधर्मियों तक को इसकी शरण लेनी पड़ी है। ऐसी सर्व साधन-संपन्न, सहस्रों वर्षों की सुख-समृद्धियों में पली एक उन्नत राष्ट्र की विजयिनी भाषा में केवल आठ-दस उच्चकोटि के काव्यों की गणना आश्चर्य की बात नहीं है। विपरीत परिस्थितियों और विपत्तियों के जिस क्रूर झंझावात से होकर संस्कृत-साहित्य को गुजरना पड़ा है उसकी भी समानता कोई दूसरी भाषा नहीं कर सकती। किन्तु इसके साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि "सिंहों के लंहड़े नहीं हंसों की नहिं पांत", सर्वोत्कृष्ट वस्तु शताब्दियों में कहीं एकाध ही बनती है। सात सौ वर्षों के हिन्दी-साहित्य में रामचरितमानस का प्रतिद्वंद्वी कौन ग्रन्थ रचा गया? इसी प्रकार संस्कृत के जिन उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थों की चर्चा ऊपर की गई है, वे संस्कृत साहित्य के अनुपम रत्न हैं। सहस्रों वर्षों की लंबी अवधि में उनकी समानता करने की क्षमता किसी अन्य रचना में नहीं हुई। समय और विपत्तियों के थपेड़े में भी वे हिमवान् की भाँति अविचल रहे। विरोधियों के विध्वंसक उपायों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

संस्कृत के इन काव्यों में, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, तीन तो अकेले कालिदास के ही हैं और शेष तीन एक-एक कवि के हैं। वह अगाध पुण्यशील और अमर यशस्वी महाकवि कालिदास धन्य था, जिसकी समस्त रचनाएं संस्कृत साहित्य की अब तक मुकुटमणि बनी हैं। किन्तु इन तीन अन्य महाकवियों का भी उज्ज्वल यश कभी मलिन होनेवाला नहीं है, जिनकी ये रचनाएं उन्हें अमर बनाने में पूर्ण सशक्त हैं। वास्तव में कवियों की छोटाई या बड़ाई का निर्णय करना बड़ा कठिन कार्य है। उनकी कृतियों की तुलना करने के लिए किसी तराजू या बटखरे का ढूंढ़ना असंभव है। प्रत्येक प्रकृत कवि में कोई न कोई अपूर्वता, नवीनता और विशेषता होती ही है। रचनाशैली भिन्न होती है, भिन्न-भिन्न गुणों का समावेश उनकी रचनाओं में होता है। किसी को कुछ खास चीजें पसन्द आती हैं, किसी को कुछ दूसरी। भाषा और वर्ण्य-विषय भी अन्तर डालता ही है। ऐसी स्थिति में किसे

सबसे अच्छा कहा जाय और किसे उससे छोटा यह बड़ा—कठिन कार्य है। यही कारण है कि पण्डित-समाज में आज तक भिन्न-भिन्न कवियों के संबंध में भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। कोई कालिदास को सर्वश्रेष्ठ कवि मानता है तो कोई भारवि को। कोई माघ को सर्वगुणसंपन्न बताता है तो कोई श्रीहर्ष को। अपने-अपने मतों की पुष्टि के लिए आलोचकों के पास प्राचीन सूक्तियों के भण्डार भी भरे पड़े हैं। हम यहाँ इस अप्रिय तथा आग्रह भरे विवाद में पड़ना नहीं चाहते, किंतु अपने वर्ण्य-विषय के प्रतिपादन के लिए कुछ प्राचीन सूक्तियों के उद्धरण का लोभ भी नहीं संवरण कर सकते।

शिशुपालबध का वैशिष्ट्य

उपर्युक्त छहों काव्य-ग्रन्थों के संबंध में पंडितसमाज में निम्नलिखित दो सूक्तियाँ अति प्रचलित हैं—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे (दण्डिनः) पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥१॥
तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥२॥

अर्थात्, "कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, नैषध अथवा दण्डी का पदलालित्य प्रशंसनीय है, किंतु माघ कवि में ये तीनों ही गुण पाये जाते हैं। तथा भारवि कवि की कान्ति तभी तक शोभा पाती है जब तक माघ कवि का उदय नहीं होता। लेकिन नैषध काव्य के प्रकाश में आने पर कहाँ माघ और कहाँ भारवि?" ऊपर की सूक्ति के आधार पर माघ कवि सर्वश्रेष्ठ हुए तो नीचे वाली सूक्ति से वे नैषधकार श्रीहर्ष से पीछे हो जाते हैं। किंतु माघ कवि के संबंध में सूक्तियों का यह जाल दूसरे कवियों की अपेक्षा बहुत बड़ा है। अनेक तर्कों से वे सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार किये गये हैं। क्या अलंकारों की छटा, क्या अर्थ और भाव की गंभीरता, क्या अन्य लौकिक विषयों का अगाध ज्ञान-गौरव, क्या पदों की मनोहारिता तथा क्या वर्ण्य विषय तथा भाषा पर उनका असीम अधिकार। सभी वस्तुओं से माघ को सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करनेवाले आलोचकों ने उनकी बहुमुखी प्रशस्तियाँ गायीं हैं। उनके एकलौते महाकाव्य का गौरव संस्कृत समाज में शताब्दियों से उन्हीं की भाँति सर्वोपरि स्वीकार किया गया है :—

'कृत्स्नप्रबोधकृत् वाणी भारवेरिव भारवेः।
माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते॥१॥'

[राजशेखर]

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥२॥

[धनपाल]

"सूर्य की किरणों की भाँति जहाँ कविवर भारवि की कविता समग्र ज्ञान को प्रकाशित करने वाली है, वहीं माघ मास के समान माघ का नाम सुनकर किस (कवि) को कँपकँपी नहीं आ जाती।" तथा "जिस प्रकार माघ महीने के ठिठुरते हुए जाड़े में बन्दर लोग सूर्य का स्मरण करते हैं और चुपचाप रहकर इधर-उधर उछल-कूद नहीं मचाते, उसी प्रकार माघ कवि की रचना का स्मरण करके बड़े-बड़े कवियों का उत्साह पद-योजना करने में ठण्डा पड़ जाता है, चाहे वह भारवि के पदों का कितना ही स्मरण क्यों न करें।"

इन दोनों सूक्तियों में यद्यपि इनके कर्ताओं का हृदय भारवि की ओर झुका हुआ है, किंतु उनके मस्तिष्क में माघ की धाक धँसी हुई है। इसी प्रकार एक स्थान पर माघ और कालिदास की चर्चा इस प्रकार की गई है:—

"पुष्पेषु जाती, नगरीषु काञ्ची, नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णुः।
नदीषु गंगा नृपतौ च रामः काव्येषु माघः कवि कालिदासः॥"

प्रसिद्धि है कि यह श्लोक विक्रम के नवरत्न घटखर्पर का है। जो हो, माघ की इस एक अद्वितीय रचना शिशुपालबध के प्रति सूक्तिकार का आग्रह स्पष्ट है। कविरूप में कालिदास की समानता करनेवाले माघ कैसे हो सकते थे, जिनकी केवल एक ही रचना सामने आती है, जब कि दूसरी ओर कालिदास ने अपनी रससिद्ध लेखनी जहाँ लगा दी, वह सब का सब काव्य बन गया है। किन्तु इतना तो इससे भी स्पष्ट होता है कि संस्कृत काव्यों में शिशुपालबध का स्थान अद्वितीय है।

शिशुपालबध माघ कवि की एकमात्र रचना है। यद्यपि कुछ स्फुट श्लोकों के रचनाकार के रूप में भी माघ का नाम लिया जाता है; किन्तु शिशुपालबध के अतिरिक्त उनकी अन्य किसी रचना का नाम सामने नहीं आता। इस एक ही ग्रन्थ के कारण उन्होंने संस्कृत-साहित्य में अपना शीर्षण्य स्थान बना लिया है। यद्यपि माघ के शिशुपालबध की प्रमुख विशेषताओं की संख्या एक-दो नहीं है और सभी प्रकार के काव्य गुणों की अपूर्व छटा इस अनुपम कृति में स्थान-स्थान पर छहरी दिखाई पड़ती है, किन्तु उसकी एक विशेषता की ओर सबका ध्यान बरबस ही चला जाता है। वह है उसकी शब्दयोजना तथा पदयोजना। न केवल शब्दों तथा पदों के ललित-विन्यास में ही माघ निपुण थे, प्रत्युत नवीन-नूतन श्रुतिमधुर शब्दा-वली के तो वह मानों शिल्पी ही थे। भट्टि की भाँति व्याकरण के सूत्रों का उदाहरण

बनाने के लिए वे नहीं बैठे थे और न श्रीहर्ष की भाँति जटिल शब्दों को ढूंढ़-ढूंढ़कर पदों में पच्चीकारी करने का ही उन्हें व्यसन था; किन्तु कहा यह जाता है कि कविता के क्षेत्र में माघ ने जितने नूतन शब्दों का प्रयोग किया है, उतना किसी अन्य कवि से अकेले नहीं बन पड़ा है। उनके महाकाव्य शिशुपालबध के संबंध में यह सूक्ति संस्कृत समाज में अति प्रचलित है:—

नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

—माघकृत शिशुपालबध महाकाव्य का नवसर्ग समाप्त होने पर कोई ऐसा नया शब्द नहीं रह जाता, जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र में कहीं अन्यत्र हुआ हो। इसी प्रकार पद-माधुर्य की निपुणता तो कोई माघ से ही आकर सीख सकता है। उनके पदों में श्रुतिमधुर शब्दों की संगीतात्मक एकरसता, वीणा के तारों की झनकार की भाँति अर्थावबोध की प्रतीक्षा बिना किए ही हृदय को रसाप्लुप्त बनाती है।

नवपलाशपलाशवनं ततः स्फुटपरागपरागतपंकजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।सर्ग ६, २।।
वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसम्भ्रमसम्भृतशोभया।
चलितया विदधे कलमेखला कलकलोऽलकलोलदृशान्यया।।सर्ग ६, १४।।
मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।सर्ग ६, २०।।
विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः सुरभितमकरन्दं मन्दमायाति वायुः
सनदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामारमणरभसखेदस्वेदविछेददक्षः।।सर्ग ११, १९

इन पदों के अनवद्य लालित्य का अनुभव सहृदय पाठक सहज ही कर सकते हैं। अनुप्रास और यमक की छटा छोड़ भी दी जाय तो भी कर्ण-कुहरों में अमृत रस घोलने वाली मधुर शब्दावली ही पर्याप्त काव्यानन्द दे जाती है। श्लेष, यमक और अनुप्रास की रचना में संभवतः माघ के समान सफलता किसी अन्य संस्कृत कवि को नहीं मिली है। उसका कारण यह था कि वे एक प्रकांड महावैयाकरण[1] थे। शब्दों की निरुक्ति और व्युत्पत्ति की अपार क्षमता उनमें थी और जब जैसा प्रयोग उन्हें भाता था, वैसा ही अनायास वे करते भी

---

१. जैसा कि शिशुपालवध की अनेक हस्तलिखित प्रतियों की पुष्पिका में इस प्रकार लिखा गया है:—इति श्री भिन्नमालववास्तव्य दत्तक सूनोर्महा-वैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे....... इत्यादि।

थे। ऐसा लगता है, जैसे अपने एक-एक छन्द को उन्होंने काव्य गुणों के एक-एक ढांचे में ढाल कर निकाला हो। क्या रस, क्या अलंकार, क्या शब्दयोजना और क्या वर्ण्य-विषय की अन्विति—किसी भी वस्तु में कहीं से कोई त्रुटि नहीं परिलक्षित होती। कविता-कामिनी के सर्वविधि श्रृंगारों को उन्होंने हस्तगत किया था। ध्वनि को ही काव्य का सर्वस्व माननेवालों से लेकर अलंकारप्रेमी अथवा शब्दबैचित्र्य या विकट बन्धों (अनुलोम, प्रतिलोम, एकाक्षर, सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका आदि) के निर्माण में पांडित्य-प्रदर्शन करनेवालों तक को संतुष्ट करने की माघ ने अपने काव्य में पूरी सामग्री प्रस्तुत की है। किन्तु क्या मजाल है कि अर्थ, भाव तथा वर्ण्य-विषय की अन्विति में कोई बाधा उपस्थित हुई हो। भावों की नूतनता, मनोज्ञता तथा रचनाचातुरी की अनुपम छटा उनके महाकाव्य में सर्वत्र दिखायी पड़ती है।

माघ एक उत्कृष्ट रससिद्ध कवीश्वर थे। यह सत्य है कि कविकुलगुरु कालिदास की भाँति उनकी कविता सर्वसाधारण जनों की मनोभावनी नहीं हो सकी, किंतु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि समीक्षकों की दृष्टि में माघ की महत्ता कालिदास से कम नहीं है। कालिदास का काव्य यदि स्वच्छ मानसरोवर है, जिसमें सब प्रकार के आकर्षण मौजूद हैं तो माघ का काव्य अगाध रत्नाकर समुद्र है, जिसमें अवगाहन करने की स्फुरणा सर्वसाधारण में नहीं होती। कालिदास यदि जनता के कवि थे तो माघ कवियों के कवि तथा पण्डितों के पथ-प्रदर्शक थे। उनकी रचना की छटा निहारने की शक्ति अथवा उससे काव्यानन्द प्राप्त करने की क्षमता साधारण काव्यप्रेमियों से ऊपरी वर्ग के काव्य-रसिकों में होती है। सचमुच वे माघ महीने की भाँति पण्डितम्मन्य नवयुवकों को भी कँपा देने वाले थे। यही कारण था कि कितने पण्डित लोग आजीवन माघ की इस एकमात्र अनूठी कृति के अनुशीलन में ही अपना समग्र जीवन लगा देते थे। संस्कृत समाज में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि—

"मेघे माघे गतं वयः"

—'कालिदास कृत मेघदूत तथा माघकृत माघकाव्य अथवा शिशुपालबध के अध्ययन एवं परिशीलन में ही पूर्ण आयु चली गयी।' ऐसे अगाध रत्नाकर के गुण-दोषों की समीक्षा करना बड़े साहस, समय और परिचयचारुता का काम है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि विदेशी शिक्षापद्धति के कारण विदेशी महाकवियों तथा उनकी कृतियों के सम्बन्ध में तो अथ से लेकर इति तक सब कुछ बता देने

वाले विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, विद्वान प्राध्यापक, कवि तथा लेखक अवश्य ही अधिक मिलेंगे किन्तु हिन्दी की जननी सुरभारती के वरद पुत्र संस्कृत के अमर कवियों की कृतियों का नाम तो दूर रहा, स्वयं उन्हीं के नाम से परिचित होने की बात भी हमारे कितने ही कालेज के विद्यार्थी, विद्वान् प्राध्यापक, ख्यातनामा कवि तथा लेखक नहीं बता सकेंगे। हिन्दी के लेखकों, कवियों तथा समालोचकों में बहुधा ऐसे कम लोग मिलेंगे, जो विदेशों के प्राचीन कवियों तथा उनकी कृतियों को चाट न गये हों, किन्तु यदि उनसे पूछा जाय कि अश्वघोष की प्रमुख कृति क्या है तथा माघ के अद्वितीय महाकाव्य का क्या नाम है तो संभवतः उनमें से बहुत कम लोग इस बात का उत्तर दे सकेंगे। किन्तु हिन्दी की समृद्धि के लिए अब अधिक दिनों तक यह प्रवृत्ति नहीं चल सकेगी। हिन्दी के साधकों को संस्कृत के इन महान सिद्धों का परिचय-लाभ करना ही होगा। और इस प्रकार थोड़ा रुक कर, श्रमपूर्वक उन्हें इस अपनी पुरानी अमूल्य सम्पत्ति का लेखा-जोखा लगा लेने में लाभ ही लाभ होगा।

कथावस्तु

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, शिशुपालबध माघ कवि की एकमात्र रचना है, इस विस्तृत महाकाव्य में कवि की महान कवित्व-शक्ति तथा अगाध पाण्डित्य का पदे-पदे प्रदर्शन है। यह महाकाव्य बीस सर्गों का है। और इसके छन्दों की संख्या कुल मिला कर १६५० है। इसमें अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो संस्कृत का ऐसा एक भी प्रचलित छन्द न मिलेगा जिसका प्रयोग माघ ने अपने इस महाकाव्य में न किया हो। संक्षेप में इसकी कथा इस प्रकार है:—

"भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में वसुदेव के सद्म में विराजमान हैं, वहीं देवर्षि नारद पहुँचते हैं और बातचीत के प्रसंग में वे जन्म-जन्मान्तर से देवताओं के परम विरोधी चेदिनरेश शिशुपाल का नाश करने की प्रेरणा देते हैं। शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण की फूआ का लड़का अर्थात् उनका फुफेरा भाई था। भाई के ऊपर चढ़ाई कर के उसका सत्यानाश करने की बात कुछ अटपटी अवश्य थी किन्तु लोकोत्तर पुरुष श्रीकृष्ण को पूरे भूमण्डल की सुव्यवस्था और शान्ति की चिन्ता थी। बलराम की सम्मति में शिशुपाल पर तुरन्त ही चढ़ाई कर देना उचित था किन्तु मनीषी और राजनीति में निष्णात उद्धव उन्हें कुछ देर रुक कर किसी अन्य बहाने से शिशुपाल पर चढ़ाई करने की सलाह देते हैं। उद्धव की बात इसलिए और उचित ठहरती है कि ठीक उसी अवसर पर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर

राजसूय यज्ञ का आयोजन कर रहे थे, जिसमें भूमण्डल भर के नरेशों की उपस्थिति संभावित थी और शिशुपाल का आगमन भी उस अवसर पर अवश्यम्भावी था। उद्धव की बात मान ली जाती है और भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सेना, सम्मानित पुरजन और परिजनों के साथ इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान करते हैं। मार्ग में उनका सारथी दारुक रैवतक पर्वत का बड़ा मनोहारि वर्णन करता है। रात्रि हो जाने पर सेना उसी पर्वत पर पड़ाव डाल देती है और यदुवंशी लोग प्रकृति सुन्दरी के उस मनोहर प्रांगण में मुक्त बिहार करने लगते हैं। सरोवरों में जलक्रीड़ा तथा वन्यभूमि पर बन-विहार करने के उपरान्त सूर्योदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण यमुना पार कर सब के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाते हैं। युधिष्ठिर उनकी अग्रिम पूजा कर के उन्हें सम्मानित करते हैं। चेदिनरेश अभिमानी शिशुपाल को श्रीकृष्ण का यह सम्मान सहन नहीं होता और वह इसका प्रत्यक्ष विरोध करता है। इतना ही नहीं, वह श्रीकृष्ण और उनके भक्त पाण्डवों को अपमानित करने के लिए तुरन्त ही अपनी सेना को युद्धार्थ सुसज्जित होने का आदेश देता है और अपने विशेष दूत द्वारा गर्वोक्ति से भरा संदेश भेज कर युद्ध को अनिवार्य बना देता है। फिर तो श्रीकृष्ण और शिशुपाल की विशाल सेना में तुमुल युद्ध छिड़ जाता है और अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का काम तमाम कर देते हैं और उसका शरीरस्थ तेज उन्हीं में आ कर विलीन हो जाता है।"

काव्य-सौष्ठव

बस यही छोटी-सी कथा है, जिसकी घटना पुराणों में अति प्रसिद्ध है। किन्तु इसी छोटी-सी घटना का कवि ने इतना विशद वर्णन किया है कि एक बड़ा विशाल महाकाव्य तैयार हो गया है। इसमें कोई भी बात सीधे-सादे शब्दो में नहीं कही गयी है। कथा के प्रवाह को ऐसे मनोहारी मोड़ों पर ला कर रोका गया है कि पाठक को पता भी नहीं चलता कि वह कहाँ खड़ा है और क्या देख रहा है। जिधर भी उसकी दृष्टि जाती है वह चकित हो जाता है। कोई वर्णन, कोई प्रसंग अथवा कोई भाव साधारण ढंग से नहीं प्रस्तुत किया गया है, यहाँ तक कि कथा का प्रवाह भी जहाँ कहीं आगे बढ़ाया गया है, वहाँ भी अन्योक्ति, व्यंग अथवा किसी अलंकार की मनोहारि लपेट है। यही कारण है कि समूचा महाकाव्य आदि से ले कर अन्त तक अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन गया है। माघ की भाषाशैली तथा भाव-प्रकाशन की प्रणाली—दोनों ही असाधारण हैं। अन्य कवियों ने जिन प्रसंगों को अधूरा छोड़ दिया है, माघ ने उन्हें अपनी प्रतिभा से पर्याप्त सत्कृत किया है। उनकी वर्णन-चातुरी, भाव-सुष्ठुता, विचारों की गंभीरता सर्वत्र विद्यमान हैं। कोई ऐसा वर्णन नहीं है जिसमें नूतनता, सजीवता तथा आकर्षण का अभाव हो। प्रकृति-

पर्यवेक्षण एवं उसके चित्रण की माघ की अपनी शैली है। उनके प्राकृतिक चित्रों में एक विचित्र ढंग की मोहिनी है, जिसमें प्रकृति सुन्दरी के सहज शृंगारों का भरपूर प्रयोग किया गया है। यद्यपि उन्होंने प्रकृति के सभी उपादानों को अधिकांशतः उद्दीपन विभाव के रूप में ही ग्रहण किया है किन्तु बन, पर्वत, नदी, वृक्ष, लता, संध्या, उषा, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, सरोवर, कुंज, उपवन, हरीतिमा, प्रकाश, अन्धकार आदि की विशेषताओं तथा भिन्न-भिन्न ऋतुओं में फूलने वाले पुष्पों का इतना सूक्ष्म चित्रण किया है कि पाठक उनके वर्णनों में चित्र देखने जैसा आनन्द प्राप्त करता है। साथ ही उनके ऐसे वर्णनों में भिन्न-भिन्न अलंकारों की ऐसी सजीवता पाई जाती है जो अन्यत्र दूसरे काव्यों में बहुत कम मिलती है।

माघ का कोई भी वर्णन अलंकारविहीन नहीं है। अलंकारों के बिना तो वे जैसे चल ही नहीं पाते। इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने हिन्दी के आचार्य कवि केशवदास की भाँति अलंकारों को ला-ला कर छन्दों के मत्थे मढ़ा है और वर्ण्य-विषय को उससे मन्थर तथा अशोभन बना दिया है; प्रत्युत इसके विपरीत उनके अलंकारों की मनोहारी छटा वर्ण्य-विषय को जीवन्त करने के साथ-साथ कविता-कामिनी के सौन्दर्य को कई गुना बढ़ा देती है—

नवकुंकुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकरः॥
गतवत्यराजत जपाकुसुमस्तबकद्युतौ दिनकरेऽवनतिम्।
बहलानुरागकुरुविन्ददलप्रतिबद्धमध्यमिव दिग्वलयम्॥
द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो वपुरर्धमग्नवपुषः पयसि।
रुरुचे विरिञ्चिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव॥सर्ग ९, ७-९॥

—सन्ध्या हो जाने पर पश्चिम दिशा नवीन कुंकुम के समान लाल-लाल बादलों से व्याप्त हो गयी और उधर आकाश भी सूर्य की किरणों से व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर हो गया।[1] सूर्य भी उस दिशा में जा कर अत्यन्त लाल (अनुरक्त) हो गये और उनकी शोभा जवाकुसुम के पुष्पों के गुच्छों की कान्ति के समान हो गयी। इस प्रकार सूर्य के अस्तोन्मुख हो जाने पर समस्त दिङ्मण्डल ऐसा सुशोभित

१. यह तो एक अर्थ हुआ, समासोक्ति का चमत्कार लीजिए—उष्णरश्मि भास्कर नूतन कुंकुम से अनुरंजित लाल वर्ण के पयोधरोंवाली, अपने हाथ से पकड़े हुए वस्त्र से सुशोभित, वरुण की दिशा अर्थात् (पर स्त्री) पश्चिम दिशा के साथ अत्यंत आसक्त होकर अनुरक्त हो गया।

होने लगा मानो अत्यन्त लाल पद्मराग मणि के टुकड़ों के मध्य में जटित कंकण हो। जब तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिमान सूर्य के बिम्ब का आधा भाग आकाश में विलीन हो गया और आधा भाग दिखायी पड़ने लगा तो वह इस प्रकार सुशोभित हुआ जैसे सृष्टि के आदि में प्रजापति ब्रह्मा के नख द्वारा दो खण्डों में विभक्त ब्रह्माण्ड का एक खण्ड हो।"

ऊपर के इन तीनों श्लोकों में अस्तोन्मुख सूर्य की सुन्दरता के वर्णन के साथ-साथ समासोक्ति, उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकार की अनुपम छटा है!

इसी प्रकार माघ का प्रभात वर्णन भी अनवद्य है—

विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तीर्यतेऽर्कः॥
पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः स्फुटमनिशतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमंगमुद्यन्दधाति, ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान्॥
उदयशिखरशृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन् सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥

सर्ग ११ श्लोक ४४, ४५, ४७

तथा

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥

सर्ग ११, श्लोक ६४॥

"सूर्य पूर्व के क्षितिज पर विशाल गोलाकार रूप में दिखाई पड़ रहा है और उसकी किरणें पहले की अपेक्षा बड़ी हो कर सभी दिशाओं में फैल गयी हैं। मालूम होता है, यह सूर्य नहीं है, एक विशाल कलश है, जिसे दिशारूपी रमणियाँ चिड़ियों के कोलाहल के बहाने अपनी किरणरूपी रस्सियों में बांध कर समुद्र के जल के भीतर से बाहर निकाल रही हैं।" रमणियों द्वारा इस प्रकार कुएं से बड़ा कलश निकालने के समय खूब कोलाहल होना ही चाहिए, उसका स्थान प्रातःकालिक चिड़ियों की चहचहाहट को दिया गया है। "इस प्रकार उदित सूर्य खैर की लकड़ी के अंगार की भाँति लाल वर्ण का दिखाई पड़ रहा है। ऐसा मालूम होता है कि जब वह रात को जलनिधि समुद्र के जल में डूब गया था तो उस समय समुद्र-स्थित बडवानल की ज्वाला से सन्तप्त हो कर अत्यन्त लाल हो गया था। बालक सूर्य उदयाचल के विस्तृत उच्च शिखरों पर चलने लगा। इधर चिड़ियाँ वेग से चहचहाने लगीं। उस समय ऐसा मालूम होता

है मानों आकाशरूपिणी माता अपने प्यारे पुत्र को अपने समीप बुला रही है और बाल सूर्य अपने करों (किरणों) को फैलाये हुए हँसते-डोलते उसके समीप पहुँच रहा है।" (प्रभात के समय धीरे धीरे आकाश में ऊपर उठने वाले बाल सूर्य के प्रति कवि की कैसी सुन्दर कल्पना है !) और अब आगे चल कर "प्रातःकाल हो गया, कुमुद बन की शोभा नष्ट हो रही है, और कमलों के बन की शोभा बढ़ रही है, उल्लू का आनन्द लुट रहा है और चक्रवाक-दम्पति प्रेम के पारावार में निमग्न हो रहे हैं। सूर्य का उदय हो रहा है और चन्द्रमा डूब रहा है। विचित्र दृश्य है। सचमुच; बुरे भाग्यवालों को परिणाम भी विचित्र ही मिलता है।"

इस प्रकार ऊपर के श्लोकों में प्रातःकालीन सूर्य के उदय का जो मनोहारि वर्णन कवि ने किया है, उसमें रेखाचित्र प्रस्तुत करने की सम्पूर्ण सामग्री है, साथ ही रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, अतिशयोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास की छटा भी मनोज्ञ है। कवि ने जो उत्प्रेक्षाएं की हैं, उनका आधार भारतीय जीवन की शाश्वत वस्तुओं से लिया गया है, कोरी उड़ान नहीं है। ग्रामीण वधुएँ जब झुण्ड की झुण्ड कुएं से घड़ा निकालने लगती हैं तथा माता ऊपर खड़ी हो कर जब नीचे खड़े अपने बच्चे को ऊपर बुलाने लगती है तो जैसा कुछ दृश्य हो सकता है, उसका विस्तृत वर्णन कवि ने किया है।

बाल जीवन की अनेक झाँकियों को कवि ने प्रकृति वर्णन के अनेक अवसरों पर सजाया है। उषा को रजनी की एक सद्योजात सुन्दरी कन्या की उत्प्रेक्षा में कवि की आँखों ने किस कल्पना से विमण्डित किया है—

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमाला कज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥
सर्ग ११, श्लोक ४०॥

"रात्रि के चले जाने पर प्रातःकाल की सन्ध्या अर्थात् उषा उसी के पीछे जाती हुई ऐसी सुशोभित हो रही है जैसी वह रजनी की सद्योजात सुन्दरी कन्या हो। वह कैसी सुन्दरी है। लाल कमलों की पंक्तियाँ तथा पँखुड़ियाँ मानों उसकी सुन्दर हथेली तथा अँगुलियाँ हैं, घूमने वाले भ्रमर वृन्द मानों उसकी आँखों के काजल हैं, तथा प्रफुल्ल कमल उसके सुन्दर नेत्र हैं और पक्षियों का कलरव उसका सुन्दर गान है।"

इसी प्रकार उदयाचल से ऊपर उठते हुए सूर्य को कवि ने समासोक्ति द्वारा एक राजा के रूप में अति सुन्दर ढंग से चित्रित किया है—

अगमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतिमह्नाय लोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ॥
सर्ग ११ श्लोक ४८॥

"लोगों के देखते-देखते ही सूर्य की किरणें धरती पर छा गयीं। ऐसा लगता है मानों, सूर्य भगवान् कुछ देर के लिए पृथ्वी पर पैर लटका कर उदयाचल रूपी सिंहासन पर विराजमान हैं। इधर संसार के जीव उनका ऐसा भव्य दर्शन पाकर प्रसन्न हो उठे हैं और उन्हें प्रणाम करने लगे हैं, यह देख कर उन्हें सम्पूर्ण धरतीतल को एक बार घूम कर देख आने की लालसा हो गयी है। मानों इसी कारण से वे अपने उदयाचल रूपी सिंहासन से उठ खड़े हुए हैं।" प्रजाहितैषी राजा महाराजा लोग ठीक इसी प्रकार करते ही हैं। थोड़ी देर तक प्रजाजन को दर्शन देने के लिए सिंहासन पर नीचे की ओर पैर रख कर विराजमान होते हैं और फिर थोड़ी देर तक प्रजा का प्रणाम ग्रहण कर अपने सम्पूर्ण राज्य का दौड़ा करने के लिए उठ खड़े होते हैं।

इसी प्रकार माघ का प्रकृति वर्णन सर्वत्र अलंकारों से विभूषित है। कोई भी दृश्य बिना किसी नवीनता के नहीं चित्रित किया गया है। वृक्षों, लताओं, पर्वतों और नदियों के वर्णनों में उन्होंने उद्दीपन विभाव की चरम अभिव्यक्ति की है। शृंगार रस के तो वे सिद्धहस्त कवि थे। उनका वन विहार तथा जल क्रीड़ा वर्णन अपने ढंग का अनूठा है। यद्यपि ये स्थल अश्लीलता के दोष से सर्वथा मुक्त नहीं हैं किन्तु यह अश्लीलता कहीं भी रोगग्रस्त नहीं है। कवि सर्वत्र उससे मुक्त दिखायी पड़ता है और पाठक भी मुक्त दृष्टि से ही उसे ग्रहण करते हैं।

माघ के मानवीय आचार-विचार शास्त्रानुमोदित तथा भारतीय परम्परा से अनुप्राणित थे। कहीं भी उन्होंने शिष्टाचरण का अतिक्रमण नहीं किया है और न उनके किसी पात्र में ही इसका दुर्लक्षण है। उनके चरित्र सजीव तथा स्वाभाविक हैं। अतिमानवता के दुराग्रह में फँस कर उन्होंने अपने आदर्श चरित्रों को आकाश में नहीं उड़ाया है और न किसी कल्पना के द्वारा उन्हें धरती के पुतलों से दूर करने का यत्न किया है। यह सत्य है कि उनके महाकाव्य के नायक भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जिन्हें उन्होंने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु का सोलह कलाओं से पूर्ण अवतार माना है, किन्तु सुप्रसिद्ध पौराणिक दन्तकथाओं अथवा दैवी सम्पदाओं से समृद्ध कर के उन्हें मानव कोटि से उन्होंने अत्यन्त ऊपर नहीं बैठाया है।

माघ केवल एक सिद्धहस्त कवि ही नहीं थे, प्रत्युत वे एक सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनकी जैसी बहुज्ञता तथा बहुश्रुतता अन्य संस्कृत कवियों में कम मिलती है। भिन्न-भिन्न शास्त्रों की छोटी-से-छोटी बातों का जिस निपुणता एवं

सुन्दरता के साथ उन्होंने वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि उन सब पर उनका असाधारण अधिकार था। संस्कृत साहित्य के किसी अन्य काव्यग्रन्थ में विविध शास्त्रीय एवं लौकिक विषयों पर इस प्रकार साधिकार रचना करने की सफलता अकेले माघ को ही मिली थी। दर्शन, राजनीति, कूटनीति, सामाजिक जीवन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, सेना, गज एवं अश्व-शास्त्र तथा युद्धविज्ञान, मंत्र, पुराण, गाथा, वर्णाश्रममर्यादा, अलंकार एवं छन्दःशास्त्र—इन सब पर उनका यथेष्ट अधिकार था। यद्यपि वे सनातन धर्मानुयायी थे किन्तु नास्तिक दर्शनों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों की भी उन्हें अच्छी जानकारी थी और उन सब पर पूर्ण सहानुभूति भी थी। वेदों से लेकर पुराणों एवं स्मृतियों तक पर उनका पूर्ण अधिकार था, साथ ही व्याकरण के तो वे प्रकाण्ड पण्डित ही थे। पुरोहित-कर्म एवं यज्ञ-दीक्षा आदि कर्मकाण्डों के सम्बन्ध में भी उनकी जानकारी एक अधिकारी जैसी थी।

माघ की मान्यताएं

आस्तिक दर्शनों में से यथावसर उन्होंने जो प्रसंग लिए हैं, उन्हें अच्छी तरह पल्लवित भी किया है। विशेषकर सांख्य के तत्त्वों की चर्चा तो उन्होंने अनेक स्थलों पर की है। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन की कुछ बातों की भी अनेक स्थलों पर चर्चा की गयी है। प्रथम सर्ग में देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रार्थना की है वह सांख्य शास्त्र के अनुसार है। इसी प्रकार चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के प्रकरण में सांख्य मत की उपमा देते हुए युधिष्ठिर के लिए बताया है कि वे स्वयं कुछ कार्य नहीं कर रहे थे—पुरोहित ही उनका सब कार्य कर रहे थे।

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः[1] ॥१।३३।

तस्य सांख्यपुरुषेणतुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि[2] ॥१४।१९॥

१—देवर्षि नारद कहते हैं—योगी लोग अपनी चित्तवृत्तियों को अंतर्मुखी कर के अध्यात्मदृष्टि से किसी प्रकार आपका दर्शन करते हैं। वे आपको संसार से उदासीन, महद् आदि विकारों से पृथक्, सत्त्व, रजस्—इन तीनों गुणों से लिप्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञानघन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं। इस प्रकार का मत कपिल आदि ऋषियों का है।

२—जिस प्रकार सांख्य के मत में पुरुष अपने आप पुण्य-पाप आदि कोई काम नहीं करता, बुद्धि ही सब कार्य करती है, तब भी पुरुष उन सब कार्यों का साक्षी

मीमांसा और वैशेषिक दर्शन की चर्चा भी इसी राजसूय यज्ञ के प्रसंग में की गयी है और उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण भी हुआ है। चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के प्रकरण में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एवं दान की छोटी-छोटी बातों की चर्चा की गयी है। उनसे मालूम पड़ता है कि कवि ने अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एवं समावर्तन समारोह सम्पन्न किया था। राजसूय यज्ञ में दान के मार्मिक प्रसंगों को लेकर माघ ने अपनी सहृदयता से अत्यन्त उज्ज्वल तो बना ही दिया है, साथ ही युधिष्ठिर के पावन-चरित में भी चार चाँद लगा दिये हैं—

निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपतेर्दानशौण्डमनसः पुराभवत्[1]।
वर्षकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम् ॥
प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं न स्म वेद न गुणान्तरं च सः।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं गुण्य गुण्य इति न व्यजीगणत् ॥

सर्ग १४।४६, ४७।

इसी प्रकार योगशास्त्र विषयक प्रवीणता के लिए कवि के निम्नलिखित दो श्लोक पर्याप्त हैं।

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्ध सबीज योगाः।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाऽधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्[2] ॥

सर्ग ४।५४।

होता है और वही कर्त्ता कहलाता है, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर उस राजसूय यज्ञ में यद्यपि कोई कार्य नहीं कर रहे थे, पुरोहित लोग सब कार्य कर रहे थे, और युधिष्ठिर उन सब को देख भाल रहे थे, अतः वही उस यज्ञ के कर्त्ता थे।

१—दानशूर युधिष्ठिर ने विद्या, तप आदि से शून्य निर्गुण याचकों को भी खाली हाथ नहीं जाने दिया, क्योंकि जल बरसाने वाला मेघ क्या कभी ऊसर को छोड़ कर वृष्टि करता है? इस बात से यह नहीं समझना चाहिए कि महाराज युधिष्ठिर गुणग्राही नहीं थे अथवा उन्हें गुणों का पारस्परिक अन्तर नहीं ज्ञात था—यह बात नहीं थी, बल्कि बात यह थी कि निरन्तर दानशीलता में लगे रहने के कारण उन्हें इस बात का भी ध्यान नहीं था कि प्रार्थियों में कौन गुणी है और कौन निर्गुण।

२—यह प्रसंग रैवतक वर्णन का है। इस रैवतक गिरि पर समाधि धारण करने वाले योगी जन मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा--इन चारों चित्त की

सर्वं वेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितंपुंविशेषममुमीश्वरं विदुः॥सर्ग[1] १४।६२

प्रथम श्लोक में प्रयुक्त 'मैत्र्यादि', 'चित्त परिकर्म', 'सबीजयोग', 'सत्त्वपुरुषान्यतयाख्याति', 'क्लेश' आदि योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली हैं तथा द्वितीय श्लोक में योगशास्त्र के सिद्धान्तों की दृष्टि से परमात्मा की विशिष्ट संज्ञाओं अथवा विशेषणों की चर्चा की गयी है। यहाँ ज्ञानी पुरुष से कवि का तात्पर्य योगी पुरुष से है।

अद्वैत वेदान्त के तत्त्वों का प्रतिपादन तो अनेक स्थलों पर है। संसार को मिथ्या माया मान कर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एकमात्र सत्य मानने की चर्चा तथा केवल ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष-प्राप्ति की आकांक्षा को कवि ने अनेक स्थलों पर प्रकट किया है। वेदान्त की कुछ अन्यान्य सिद्धान्त-परक बातों की भी उन-उन अवसरों पर चर्चा आयी है। इस सम्बन्ध में एक ही प्रसंग उद्धृत कर देना पर्याप्त है।

ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः[2] १४ सर्ग ६४॥

नास्तिक दर्शनों में बौद्धमत की चर्चा अनेक अवसरों पर की गयी है तथा जैन मत के आदि प्रवर्त्तक महावीर स्वामी के प्रति भी एक स्थान पर आदर व्यक्त किया गया है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कवि ने पुराणवादियों की भाँति महावीर स्वामी को भी भगवान् विष्णु का एक अवतार स्वीकार किया है।

शोधक वृत्तियों को भली भाँति जान कर एवं अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश—इन पांचों क्लेशों को दूर कर, बीज युक्त योग को प्राप्त कर एवं प्रकृति तथा पुरुष की ख्याति अर्थात् ज्ञान को पृथक्-पृथक् रूप में जान कर उस 'ख्याति' को भी दूर करने की अभिलाषा करते हैं।

१—यह प्रसंग उस समय का है, जब राजसूय यज्ञ में भीष्म भगवान् श्रीकृष्ण की प्रथम पूज्यता के संबंध में युधिष्ठिर का समाधान करते हैं—'ये भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, अनादि, अनन्त, संसार के प्राणियों पर अनुग्रह करने की भावना से शरीर धारण करने वाले, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-क्लेशों से रहित, पाप और पुण्य के फल-भोग से रहित, ईश्वर और परम पुरुष हैं। इन्हें इन्हीं रूपों में ज्ञानी पुरुष जानते हैं।'

२—मोक्ष की आकांक्षा करने वाले अपने अज्ञान को नष्ट करने की इच्छा से, योगाराधन में चित्त लगा कर दुर्ज्ञेय और अद्वितीय परमेश्वर में प्रवेश कर जाते हैं।

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्[१] ॥सर्ग २।२८॥

इस एक ही श्लोक में कवि ने बौद्ध दर्शन की स्थूल बातों के साथ राजनीति की सूक्ष्म बातों की सुन्दर चर्चा कर दी है। मीमांसा शास्त्र की निपुणता निम्नलिखित दो श्लोकों से ज्ञात होती है।

प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैर्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः[२] ॥
सर्ग ११।४१॥

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया ।
याज्यया यजनधर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्[३] ॥
सर्ग १४।२०॥

परिचयचारुता

संगीत एवं अन्यान्य उपयोगी ललित कलाओं की सूक्ष्म बातों की चर्चा अनेक जगह की है। गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध में कवि की अधिकार-पूर्ण उपमाएं एवं उक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि संगीत-शास्त्र पर उसका साहित्य-शास्त्र के समान ही असाधारण अधिकार था। इसी प्रकार नृत्यकला तथा नाट्यकला पर

१—बौद्ध मत के अनुयायी आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं मानते। वे शरीर को पांच स्कन्धों से युक्त मानते हैं—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। इन पांच स्कन्धों के अतिरिक्त जिस प्रकार शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है उसी प्रकार राजाओं के लिए अंग-पंचक युक्त मंत्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्य मंत्र नहीं है। वे पांचों अंग ये हैं—सहाय, साधनोपाय, देशकाल-विभाग, विपत्ति-प्रतीकार तथा सिद्धि। तात्पर्य यह है कि राजा को बौद्धों के पांचों स्कन्धों की भांति केवल इन अंग-पंचकों की ही चिन्ता रखनी चाहिए।

२—यह अग्नि अग्निहोत्र करने वाले प्रत्येक द्विज के घर में जल रही थी। उसमें श्रेष्ठ पुरोहित लोग शास्त्रीय रीति से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का ध्यान रख कर अग्नि प्रज्वलित करने वाले मंत्रों का पाठ करते हुए सम्यक् प्रकार से आहुति डाल रहे थे और अग्नि उसका आस्वादन कर रही थी। अग्नि का वह आस्वादन गुरुतर पाप-समूहों को नष्ट कर रहा था।

३—मीमांसा शास्त्र के पारंगत पुरोहित गण अपभ्रंश शब्दों को त्याग कर आवाहनमंत्रों के द्वारा उच्च स्वर से इन्द्र आदि देवताओं को आवाहित कर उनके उद्देश्य से यज्ञ-मंत्रों द्वारा हवन करने योग्य सभी द्रव्यों की आहुति देने लगे।

भी उसने अधिकार प्राप्त किया था। कवि की संगीत की निपुणता निम्नलिखित दोनों श्लोकों से प्रकट होती है:—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः ।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः[1] ॥सर्ग १।१०।

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय[2] ।
सर्ग ११।१॥

नीचे के श्लोकों में श्लेष की सुन्दर छटा के साथ-साथ कवि ने अपने नाट्य शास्त्रीय ज्ञान का जो परिचय दिया है, वह उच्चकोटि का है:—

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथितांका इव नाटक प्रपंचाः।।[3]सर्ग २०।४४॥

१—नारद जी अपनी उस महती नामक वीणा को बार-बार देखते हुए जा रहे थे, जिसमें से वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन अर्थात् गुंजार से निकलने वाली श्रुतियों के समूहों एवं सा रे ग म प ध नी आदि सातों स्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की इक्कीसों मूर्च्छनाएं अपने आप प्रकट हो रही थीं।

२—श्रुतियों का पाठ करने वाले मागध गण अनेक श्रुतियों से युक्त षड्ज स्वर को छोड़ कर तथा पंचम स्वर एवं ऋषभ स्वर को त्याग कर उच्च स्वर में गाते हुए रात्रि के बीतने की सूचना भगवान् श्रीकृष्ण को देने लगे। उस समय उनका वह मधुर स्वर दूर-दूर तक सुनाई पड़ता था और उसमें कोई भी विकार नहीं था। उनके उस गान के साथ वीणा आदि वाद्य भी बज रहे थे। आचार्य भरत के मतानुसार प्रभात-काल के गीत की जैसी विशेषताएं होनी चाहिए, कवि ने उन सब की ओर इसमें संकेत किया है।

३—भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र को भली भाँति अधिगत करने वाले कवि लोग जिस प्रकार किसी उपाख्यान को ले कर नाटक की रचना करते हैं, और उसके अंकों को मुख की ओर विस्तार युक्त तथा पीछे की ओर क्रमशः संक्षिप्त रखते जाते हैं उसी प्रकार युद्धभूमि में छोड़े गये वे सर्प गण मुख की ओर मोटे तथा पीछे की ओर क्रमशः सूक्ष्म दिखायी पड़ रहे थे।

तथा स्वादयन् रसमनेकसंस्कृतप्राकृतैरकृतपात्रसंकरैः ।
भावशुद्धिविहितैर्मुदं जनो नाटकैरिव बभार भोजनैः[1] ॥ सर्ग १४।४०

कवि की राजनीतिज्ञता के सम्बन्ध में तो उसके अकेले महाकाव्य के उद्धरणों से एक छोटी-मोटी पुस्तिका प्रस्तुत की जा सकती थी। राजा के छोटे-मोटे कर्त्तव्यों से लेकर उसकी सेना की छोटी-छोटी बातों तक का उसे पूरा पता था। सन्धि-विग्रहादि गुणों के प्रयोगों के अवसरों पर उसने अपनी युक्तियों तथा परस्पर विरोधी तर्कों से उन्हें इतना सुगम बना दिया है कि उसकी सूझ-बूझ पर विस्मित होना पड़ता है। उद्धव और बलराम के मुख से तथा युधिष्ठिर और भीष्म के मुख से भी उसने राजनीति की जटिल से जटिल समस्याओं पर ऐसे उपादेय हल प्रस्तुत किये हैं, जो आज प्रजातन्त्र के युग में उसी प्रकार से प्रयोग में लाये जा सकते हैं। प्रजा की सर्वविध हित-रक्षा और राजा के विशेष व्यापक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए उसने जिस राजतंत्र की समर्थिका राजनीति की चर्चा अपने महाकाव्य में की है, वह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की परम्परा के सर्वथा अनुकूल ही है। राजनीति की जटिल गुत्थियों पर उसने जो प्रसंगगत विचार प्रकट किए हैं, उससे ज्ञात होता है कि उसका यह ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान नहीं था। शिशुपालबध का द्वितीय सर्ग कवि की राजनीतिज्ञता का अच्छा निदर्शक है। राजनीतिक दाँव-पेचों की ऐसी कोई चीज उसमें नहीं छूटने पायी है, जिसकी कमी की ओर हमारा ध्यान न जा सके। परस्पर विरोधी विचारों को आमने-सामने रख कर उसने उचित पक्ष के निर्णय का जो प्रसंग उपस्थित किया है, उससे पाठकों को भी दैनिक कार्यों में आवश्यक राजनीति का अपेक्षित ज्ञान हो जाता है।

१—जिस प्रकार दर्शक लोग नाटकों को देखते समय शृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहों रसों के व्यंजनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटक में जिस प्रकार संस्कृत, प्राकृत अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है, उसी प्रकार उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी बहुत से पदार्थ संस्कृत अर्थात् पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अर्थात् वैसे ही कच्चे खाये जा रहे थे। जिस प्रकार नाटक में एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नहीं करता उसी प्रकार भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता था। नाटक में जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है, उसी प्रकार उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक शुद्धि थी।

सम्पदा सुस्थिरं मन्ये भवति स्वल्पयाऽपि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्।।[1] २।३२।।
विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।।[2] २।३४।।
विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्।।[3] २।४२।।
पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः[4] ।।२।४६।।

राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का तो कवि ने अनेक अवसरों पर प्रयोग किया है, छः गुण, तीन शक्ति, तीन उदय तथा अंग पंचक आदि पारिभाषिक शब्दों की चर्चा इन श्लोकों में देखिए:—

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः। सर्ग २।२६।।
सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपञ्चकम्।। सर्ग २।२८।।

कुछ दूसरे पारिभाषिक शब्दों को लीजिए:—

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते।।[5] २।८१।।

१—जो मनुष्य थोड़ी-सी सम्पत्ति पा जाने पर अपने को सुस्थिर या निश्चिन्त मान लेता है, उसको उस स्वल्प सम्पत्ति को कृतार्थ विधाता भी नहीं बढ़ाता है—ऐसा मैं मानता हूँ।

२—शत्रु का समूल नाश किये बिना प्रतिष्ठा की प्राप्ति दुर्लभ है। जल धूल को कीचड़ बनाये बिना नहीं रुक सकता।

३—जो मनुष्य पहले ही से रूठे हुए शत्रु के साथ बैर ठान कर उसकी उपेक्षा करता है अथवा उसकी ओर से उदासीन हो जाता है, वह वायु के सम्मुख तिनकों के समूह में आग लगा कर सोता है।

४—जो धूल पैर से आहत होने पर उड़ कर आहत करने वाले के शिर पर चढ़ जाती है, वह अपमान होने पर भी बेफिक्र बैठ रहने वाले मनुष्य से अच्छी ही है।

५—बारह प्रकार के राजाओं के मध्य में विजयाभिलाषी राजा अकेला होने पर भी बारहों आदित्यों के मध्य में दिनकर सूर्य की भाँति इच्छा-शक्ति को न छोड़ते

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यंगो घनसंवृतिकञ्चुकः ।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः ॥[1]२।८२॥

सेना के विभागों तथा उपविभागों के साथ-साथ दुर्गरचना, अभियान, युद्धकला अथवा शस्त्रास्त्रों की मारपीट के अच्छे-अच्छे गुण कवि को बखूबी ज्ञात थे। अठारहवें, उन्नीसवें तथा बीसवें सर्ग के २७९ श्लोकों में कवि के इस विषय के परिपक्व ज्ञान का पूर्ण परिचय मिलता है। गजों और अश्वों के लक्षणों से लेकर उनके स्वभाव की छोटी-से-छोटी बातों की चर्चा कवि ने की है। युद्धस्थल का ऐसा रोमांचकारी विपुल वर्णन संस्कृत काव्यों में अन्यत्र दुर्लभ है। खच्चरों और ऊँटों से लेकर बैलों और भैंसों के स्वभावों तथा कार्यों की भी चर्चा की गयी है। साथ ही युद्धस्थल के लिए इन सब के खाद्य पदार्थों तथा उपयोगी औषधियों की भी अच्छी चर्चा है। अश्वों तथा गजों के भेदों तथा गुण दोषों की भी उसे प्रामाणिक जानकारी रही। नीचे के दो श्लोकों में उसने अश्वों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह उसके शालिहोत्री (अश्वशास्त्रनिष्णात) होने का पर्याप्त प्रमाण है—

तेजोनिरोधसमतावहितेनयन्त्रा सम्यक्कशात्रयविचारविदा नियुक्तः ।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चश्चित्रं चकार पदमर्धपलायितेन[2] ॥५ सर्ग १०॥

हुए अपनी उन्नति में समर्थ होता है। बारह प्रकार के आदित्यों की भाँति बारह, राजा ये होते हैं—शत्रु, मित्र, शत्रु का मित्र, मित्र का मित्र, शत्रु के मित्र का मित्र पार्ष्णिग्राह (अपने पीछे सहायता पहुँचाने के लिए स्वयं आने वाला), पार्ष्णिग्राहासार (अपने पक्ष में सहायता के लिए बुलाया हुआ राजा), आक्रन्दासार (शत्रु के पक्ष में सहायतार्थ बुलाया हुआ राजा), विजिगीषु अर्थात् विजयाभिलाषी, मध्यम तथा उदासीन। इन बारहों राजाओं में विजयाभिलाषी ही अपनी उत्साह-शक्ति से उदय प्राप्त करता है। अन्य ग्यारहों में से पाँच प्रथम सम्मुख या पुरस्सर तथा चार पृष्ठगामी एवं मध्यम तथा उदासीन—ये स्वतंत्र रहते हैं।

१—जिसका शस्त्र बुद्धि है, जिसके अंग स्वामी एवं अमात्य आदि राज्यांग है, जिसका कवच दुर्भेद्य मंत्र की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर हैं, जिसका मुख संदेशवाहक दूत हैं—ऐसा राजा कोई अलौकिक पुरुष ही है' अर्थात् इस लोक में रहते हुए भी इन अंगों से युक्त वह अलौकिक पुरुष है।

२—'तीव्र वेग को रोकनेवाली लगाम को थामने में सावधान एवं उत्तम, मध्यम और अधम—इन तीनों प्रकार की चाबुकों के प्रयोगों को जाननेवाले

तथा—

अव्याकुलं प्रकृतिमुत्तरधेयकर्मधाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपाः।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं वल्गाविभागकुशलो गमयाम्बभूव[1] ॥

सर्ग ५।६०॥

इसी प्रकार हाथियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन श्लोक उसके गज-सम्बन्धी गहरे ज्ञान का विषेश परिचय देते हैं—

गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभागरुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते[2] ॥

सर्ग ५।३६॥

स्तम्भं महान्तमुचितं सहसामुमोच दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः।
बद्धापराणि परितो निगडान्यलावीत् स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः[3] ॥

घुड़सवारों से भलीभाँति हाँके गये ऊँचे, आरट्ट अर्थात अरब देश में उत्पन्न घोड़े अपने विचित्र पाद-विक्षेप द्वारा कभी अत्यन्त चंचल और कभी कठोर भाव से मण्डलाकार गति विशेष से चल रहे थे।'इसमें घोडे की गति एवं चाबुक के लक्षणों की शास्त्रीय बातों की चर्चा की गयी है।

१—लगाम के नियंत्रण में कुशल एक घुड़सवार अव्यग्र अर्थात् शान्त स्वभाववाले भली भाँति सुसज्जित एवं मुखकर्म अर्थात् छहों दिशाओं मे मुख करने में प्रवीण एक अश्व को युद्धादि के उत्तर काल में करने योग्य कार्यो के लिए असंकीर्णरुपा अर्थात् सरपट नामक विशेष गति को सिखाने के लिए नवों प्रकार की बीथियों का अभ्यास कराने लगा।

२—दूसरे गजराज के मद की सुगन्ध पाकर एक गजराज क्रोध के साथ अपने मुखस्थ जल को बाहर फेंक कर समुद्र तट पर मसल के समान दोनों विशाल दांतों के प्रहार करने के वेग को निरूद्ध करते हुए कोई अवरोधक न होने के कारण स्वयं गिर पड़ा।

३—एक गजराज ने अनियंत्रित स्वच्छन्दता प्राप्त की। उसने अपने चिर परिचित महान् स्तंभ को एकाएक तोड़ दिया। हस्त (शुण्ड) के अग्रभाग को आर्द्र (गीला) करके प्रचुर मात्रा में दान दिया अर्थात् मद जल गिराया, तथा चारो ओर से पिछले पैरों को बांधने वाली बेडियों को तोड डाला। गजराज की भाँति राजा भी इसी प्रकार की उज्ज्वल स्वतंत्रता प्राप्त करता है। वह भी अपने बंधनों को तोड़ता है, हाथ में जल लेकर ब्राह्मणों को दान करता है तथा कारागार में पड़े हुए शत्रुओं की बेडियां काट देता है।

जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः ।
गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः ॥[1]
सर्ग ५।४८–४९॥

ऊँटों तथा जंगली साँड़ों और बैलों की प्रकृति का कवि ने इतना स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन किया है कि उसमें रेखाचित्र प्रस्तुत करने की पूर्ण क्षमता है। दूध दुहते हुए गोपों, खेत की रखवाली करनेवाली गृहस्थ-रमणियों, हाथी, घोड़ा, ऊँट और खच्चर हाँकनेवाले राजकर्मचारियों के चित्रण में एवं उनकी विभिन्न चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने चित्रकार को भी चुनौती दे दी है। सचमुच कवि हैं। इन बातों से यह भी पता लगता है कि उसका चित्रकला पर भी अच्छा अधिकार था। एकाध स्थलों पर चित्रकला सम्बन्धी स्फुट प्रसंगों की चर्चा करके कवि ने अपने इस विषय के ज्ञान का भी परिचय दिया है।

और कवि के साहित्य के विभिन्न अंगों—रस-सिद्धान्त, छन्द और अलंकारों की सिद्धहस्तता का कहना ही क्या है? यह सब तो कवि का अपना अधिकृत क्षेत्र है। जिधर से उसकी इच्छा हुई है, प्रसंग आरम्भ कर दिया और जिधर से चाहा है, समाप्त किया है। राजनीति और कूटनीति जैसे नीरस विषयों में भी उसने साहित्यिक पदार्थों की चर्चा कर के उन्हें हृदयंगम करने योग्य और अधिकाधिक उपादेय बना दिया है। नीचे के दो श्लोकों में कवि ने अपने इस विषय के हस्तलाघव का अनुसरणीय प्रदर्शन किया है:—

तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवे[2] ॥२।८३॥

१—एक हठीला गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरता पूर्वक अंकुश लगाये जाने पर भी आंखें मूंद कर जब खड़ा ही रह गया और अपना ग्रास भी नहीं ग्रहण किया तब लोगों ने जान लिया कि जो सचमुच महान् होते हैं वे क्षीणशक्ति होने पर भी बलपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते। यहाँ गंभीरवेदी शब्द पारिभाषिक है जिसका लक्षण है कि जो हाथी अंकुश द्वारा चमड़ी काट देने पर, रक्त बहा देने पर तथा मांस काट देने पर भी अपने होश में नहीं आता वह गंभीर वेदी कहलाता है।

२—समय को पहचानने वाले राजा के लिए केवल क्षात्र तेज दिखलाना अथवा केवल क्षमा दिखलाना—इसका कोई एकान्त नियम नहीं रहता। वह समय देख कर जहाँ जिसकी आवश्यकता होती है, उसका प्रयोग उसी प्रकार करता है, जस

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते[1] ॥२।८६॥
स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥सर्ग[2] ।८७॥

आयुर्वेद अथवा वैद्यक शास्त्र की सिद्धान्त सम्बन्धी छोटी-मोटी बातों की चर्चा कवि ने अनेक अवसरों पर की है। उन सब के परिशीलन से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद की रोग एवं औषधियों-सम्बन्धी अनेक बातों का उसे ज्ञान[3] था और कतिपय रसायनों तथा औपचारिक प्रयोगों की भी उसे पूरी जानकारी थी।

माघ के परम वैयाकरण होने की चर्चा पहले की जा चुकी है। अपने महा-वैयाकरण के रूप को उन्होंने प्रायः प्रत्येक सर्ग में प्रकट किया है और नूतन प्रयोगों तथा सिद्धान्तों की चर्चा से यह सिद्ध कर दिया है कि साहित्य के समान ही व्याकरण भी उनका प्रिय विषय था। व्याकरण की नीरस परिभाषाओं का उन्होंने अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और मनोहर संयोग बैठाया है। संस्कृत व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का भी उन्होंने एकाध स्थलों को छोड़कर कहीं भी उल्लंघन नहीं किया है और ऐसे ऐसे शब्दों को गढ़ कर प्रयोग किया है कि छन्दों की श्रुतिमधुरता बहुत बढ़ गई है।

कवि के व्याकरण-सम्बन्धी पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिये उद्धरणों की कोई आवश्यकता नहीं है। कदाचित् ही ऐसा कोई श्लोक हो जिसमें उसने किसी सुन्दर, सुघड़ किन्तु नूतन (कवियों के प्रयोग में नूतन) शब्द का प्रयोग न किया

रसों और भावों के मर्म को जाननेवाले कवि के लिए केवल ओज गुण अथवा केवल प्रसाद गुण ही अनुसरणीय नहीं होता। वे दोनों ही का यथा-प्रसंग अनुसरण करते हैं।

१—विद्वान् पुरुष न तो दैव के भरोसे रहता है और न केवल पुरुषार्थ पर ही आश्रित रहता है; किन्तु वह तो शब्द और अर्थ—दोनों की अपेक्षा करनेवाले सुकवि की भाँति, दैव और पुरुषार्थ—दोनों की अपेक्षा करता है। उत्तम काव्य का लक्षण है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।" काव्य प्रकाश।

२—जिस प्रकार रस की अवस्था प्राप्त करनेवाले एक ही स्थायी भाव के अनेक संचारी भाव स्वयं आकर सहायक हो जाते हैं उसी प्रकार क्षमापूर्वक उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करनेवाले एक ही विजिगीषु राजा की सिद्धि में दूसरे राजा लोग स्वयमेव आकर सहायक हो जाते हैं।

३—देखिए शिशुपालवध सर्ग २, ५४, ९३, ९४, ९६।

हो। व्याकरण-सम्बन्धी प्रसंगों एवं सिद्धान्तों के लिए द्वितीय सर्ग के ४७, ११२ तथा १९ वें सर्ग के ७५ वें श्लोक को देख लेना ही पर्याप्त है।

माघ और भारवि

माघ में पाण्डित्य-प्रदर्शन का शौक अत्यन्त दुर्निवार था। कवित्व की सहज शक्ति के साथ ही उनमें पाण्डित्य का स्वाभिमान एवं दूसरों को स्तम्भित करने की इच्छा भी पूर्णतः जागरूक थी। अपने अकेले महाकाव्य को उन्होंने सर्व-साधन-सम्पन्न सम्राट् के लाड़ले किन्तु दुराराध्य एकलौते बेटे की भाँति, अपनी समस्त समृद्धियों एवं शक्तियों से लालित-पालित किया है। अपने पूर्ववर्ती कवियों एवं उनकी कृतियों की समस्त विशेषताओं को आक्रान्त करने की उनमें प्रबल स्पर्धा पाई जाती है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि भारवि की अमर रचना 'किरातार्जुनीय' की बहुत-सी वस्तुओं एवं विशेषताओं को उन्होंने अपने महाकाव्य में भी प्रयुक्त किया है, किन्तु उनसे बीस कर के, उन्नीस कर के नहीं। कहीं पर उसी रूप और प्रकार का अनुसरण कर के उसे रख दिया है तो कहीं पर बिल्कुल नये ढंग और नयी रीति से उसका मुकाबला किया है। दोनों महाकाव्यों में बहुत-सी बातों की समानता पाई जाती है। कुछ समान वस्तुएं इस प्रकार हैं। दोनों ही ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में 'श्री' शब्द से वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में यदि भारवि ने 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है तो माघ ने यहाँ भी आरम्भ की तरह 'श्री' शब्द ही प्रयुक्त किया है। भारवि ने किरातार्जुनीय के द्वितीय सर्ग में यदि भीमसेन के संवाद में कुछ राजनीतिक चर्चा की है तो माघ ने उससे कहीं बढ़ कर बलराम और उद्धव के द्वारा राजनीति की बातें कहलायी हैं। भारवि ने अपने महाकाव्य के तृतीय सर्ग में अर्जुन के गमन का वर्णन किया है तो माघ ने उसी सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के गमन का वर्णकिया है। इस प्रसंग पर दोनों ही कवियों ने पुरनिवासियों की मार्मिक व्यथाओं का बड़ा मनोहर एवं आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। भारवि ने चतुर्थ और पंचम सर्गों में नगाधिराज हिमालय एवं ऋतुओं का वर्णन अनेक प्रकार के छन्दों में सुन्दर ढंग से किया है तो माघ ने भी उन्हीं सर्गों में रैवतक के प्राकृतिक दृश्यों का मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है। दोनों कवियों ने बड़ी विचित्र समानता के साथ ऋतु वर्णन के प्रसंगों पर तत्तद् वस्तुओं एवं उपादानों को ग्रहण किया है। दोनों ने अपने-अपने महाकाव्यों के आठवें सर्गों में सुन्दरियों की जल-क्रीड़ा का वर्णन तथा नवें और दसवें सर्गों में सायंकाल, चन्द्रोदय, मधुपान, रतिकेलि, प्रणयालाप आदि का श्रृंगारपूर्ण एक-सा वर्णन किया है। एक में यदि वेश्या का प्रसंग है तो दूसरे में भी यादव रमणियाँ हैं। दोनों कवियों के प्रभात-वर्णन एक ही परम्परा के अनुयायी हैं। एक में यदि

अर्जुन की कठोर तपस्या का हृदय ग्राही वर्णन है तो दूसरे में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का सविधि सविस्तार आकर्षक वर्णन है। दोनों ही महाकाव्यों में युद्धस्थल एवं युद्ध के विविध प्रकारों का रोमांचकारी वर्णन है। युद्धस्थल के प्रसंगों पर दोनों ही कवियों ने विविध प्रकार के विकट चित्रबन्धों द्वारा अपनी प्रचण्ड कवित्व-शक्ति एवं प्रखर प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। किन्तु इस दिशा में माघ के प्रयोग भारवि की अपेक्षा बहुत सफल हुए हैं। विविध चित्रबन्धों की विकट कल्पना में एक निपुण वैयाकरण के नाते जो कृतकार्यता माघ को मिली है, वह भारवि को नहीं मिल सकी है।

शिल्प

माघ के कुछ विकट बन्धों के नमूने ऐसे हैं जिन्हें देखकर पाठकों को दांतों तले अँगुली दबानी पड़ती है—

एकाक्षर पाद

जजौजोजाऽऽजिजिज्जाजी तं ततोऽतितताऽतितुत्।
भाऽऽभोऽभीभाऽभिभूभाभूरारारिर्ररिरीररः॥[1] सर्ग १९।३॥

इस श्लोक के एक चरण में केवल एक अक्षर का प्रयोग कवि ने किया है, इस प्रकार छन्द के चारों चरणों में केवल चार अक्षरों—ज, त, भ, र—का प्रयोग हुआ है। नीचे के श्लोक में केवल दो अक्षरों का प्रयोग हुआ है—

भूरिभिर्भारिभिर्भीरा भूभारैरभिरेभिरे।
भेरीरेभिभिरभ्राऽऽभैरभीरुभिरिभैरिभाः॥[2] सर्ग १९।६६॥

अब आगे इससे भी बढ़ कर विस्मयकारी बन्ध देखिए, जिसमें कवि ने केवल एक ही अक्षर का प्रयोग किया है—

दाददो दुद्ददुद्दादी दादादो दूददीददोः।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाऽददददोऽददः[3]॥ सर्ग १९।११४॥

१—तदनन्तर योद्धाओं के तेज एवं पराक्रम से होनेवाले युद्ध के विजेता, सुन्दर युद्ध करने में निपुण, उद्धत वीरों को व्यथित करनेवाले, नक्षत्र के समान कान्तिमान, निर्भीक गजराजों को भी पराजित करनेवाले बलराम रथ पर सवार हो कर उस वेणुधारी के सम्मुख युद्धार्थ दौड़ पड़े।

२—अत्यन्त भार से युक्त, भयानक, पृथ्वी के भार स्वरूप, भेरी की भाँति-भयानक शब्द करने वाले, बादलों के समान काले एवं निर्भय गजराज अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराजों से भिड़ गये।

यह तो हुई अक्षरों की करामात, अब देखिए श्लोक की पहली पूरी पंक्ति ही दूसरी पंक्ति बन गयी है:—

सदैव सम्पन्नवपूरणेषु महोदधेस्तारि महानितान्तम्।
स दैवसम्पन्नवपूरणेषु महोदधेस्तारिमहानितान्तम्॥[1] **सर्ग १९।११८॥**

चरणों या पादों के अनुलोम प्रतिलोम के तो बीसों उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किए हैं। सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, अर्थभ्रमक, असंयोग, समुद्गयमक, मुरज-बन्ध, प्रतिलोमानुलोम, गूढ़ चतुर्थ, तीन अर्थवाची, चार अर्थवाची आदि विकटातिविकट बन्धों की रचना कर कवि ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं अद्भुत कवित्व-शक्ति का जो प्रदर्शन किया है, उसका लोहा संस्कृत-समाज में सदा माना जाता रहेगा। यद्यपि इन बन्धों में सर्वत्र कवित्व-रस का मुक्त प्रवाह दूषित हो गया है, और क्लिष्ट कल्पनाओं एवं बलपूर्वक ग्रहण की जाने वाली अर्थशक्ति का सौन्दर्य घटिया कोटि का हो गया है किन्तु कवि ने जिस दृष्टिकोण से यह 'कठिन कार्य' किया है, उसमें तो वह पर्याप्त सफल माना ही जायगा।

जीवन-सूत्र

शिशुपाल बध को समाप्त करते हुए कहाकवि माघ ने अपना जो संक्षिप्त वंश-परिचय दिया है, उसके अनुसार उनके 'पिता दत्तक सर्वाश्रय थे जो प्रगल्भ विद्वान् होने के साथ ही उदारचेता अमितदानी थे। माघके पितामह सुप्रभदेव, महाराज-वर्मल के महामात्य थे'।

माघ कथित इस स्वल्प जीवन-सूत्र के आधार पर उनका जीवन-परिचय प्राप्त करना बहुत कष्ट साध्य है, यही कारण है, कि अबतक उनके उत्पत्तिकाल-जीवन की घटनाओं, उनके स्वभाव, और चरित्र के सबंध में असंदिग्ध निर्णय नहीं किया जा सकता है।

३——दानशील, दुष्टों को दुःख देने वाले, संसार को पवित्र करने वाले, दुष्टों का विनाश करने वाले भुजाओं को धारण करनेवाले, दाता तथा अदाता——दोनों ही को देनेवाले तथा बकासुर एवं पूतना आदि आततायियों को नष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने शत्रुओं पर भीषण अस्त्र चलाना शुरू किया।

१——सर्वदा सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त शरीरधारी एवं शत्रु-तेज का दलन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैवी सहायता से युक्त युद्ध में, वह प्रचण्ड तेज धारण किया जो कि महासमुद्र के पार तक पहुँच गया था।

काल-निर्णय

बसन्तगढ़ (राजस्थान) में प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर गुजरात के महाराज वर्मल (वर्मलात) का समय विक्रमी संवत् ६८२ निश्चित होता है। इन्हीं वर्मल राजा के यहां माघ के पितामह सुप्रभदेव सर्वाधिकार प्राप्त महामात्य-थे। इससे यह अनुमान किया जा सकता है, कि माघ ईस्वी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और ईस्वी आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवश्य विद्यमान रहे हैं।

सोमदेव ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' (९५९ई०) में माघ का उल्लेख किया है, और आनन्दवर्द्धन (८५०ई०) के अपने 'ध्वन्यालोक' में माघकृत शिशुपालबध के दो श्लोकों (३।५३, ५।२६) को उद्धृत किया है। कन्नड़ भाषा के सुप्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ कविराजमार्ग (८१४ई०) में माघ को कालिदास का समकक्ष स्वीकार किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माघ अपनी विद्वत्ता और परिचय, चारुता के कारण विख्यात हो चुके थे।

संस्कृत में महाकाव्य लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले दस महाकवि प्रसिद्ध हैं। इन दस महाकवियों के नाम कालक्रम के अनुसार निम्नांकित श्लोक द्वारा परम्परागत प्रसिद्ध हैं—

आदौ कालिदासः स्यादश्वघोषस्ततः परम्।
भारविश्च तथा भट्टिः कुमारश्चापि पञ्चमः॥
माघरत्नाकरौ पश्चाद् हरिश्चन्द्रस्तथैव च।
कविराजश्च श्रीहर्षः प्रख्यातः कवयो दश॥

इस परम्परागत जनश्रुति के आधार पर भी माघ कवि ईसवी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सिद्ध होते हैं।

शिशुपालबध के ११वें सर्ग के ६४ वें श्लोक का उल्लेख भोज प्रबंध में है। इस श्लोक के आधार पर भोज और माघ कवि की दानशीलता की एक कहानी भी भोजप्रबंध में लिखी होने के कारण कुछ लोग माघको भोजराज का बाल सखा कहकर उन्हें ई० ११वीं शती का मानते हैं।

धाराधीश भोजराज का समय ईस्वी १०९२ माना जाता है। भोज प्रबंध में माघ की ही भाँति कालिदास की अनेक कहानियाँ सन्निविष्ट हैं। भोजप्रबंध एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें मध्यकालीन मिथ्या प्रशंसा-योग की स्पष्ट

छाप है। भोजराज विद्याव्यसनी अवश्य थे किन्तु साथ ही उनमें यशोलिप्सा भी इतनी अधिक रही कि उनमें अन्वीक्षणशक्ति एवं सत्यासत्य विवेक तिरोहित हो गए थे। भोजप्रबंध की भी वही स्थिति हुई जो भविष्य पुराण या अन्य पुराणों की हुई। जिसकी तबीयत में आया वही व्यास बन कर पुराणों में समाता गया। यहाँ तक कि वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से मुद्रित भविष्य पुराण में उसके सम्पादक, अनुवादक ने अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए—'ग्रन्थानां समुद्धर्ता क्षेमराजो भविष्यत्' जोड़ दिया। इसी प्रकार भोजप्रबंध में भी मनमानी कल्पनायें जोड़ी और तोड़ी गई हैं। यही कारण है कि कालिदास और माघ का समय निर्धारण करना एक समस्या बन गई है।

भोज प्रबंध में उल्लिखित माघ की जीवन घटनायें कल्पित हैं। यह ठीक है कि माघ उदार, दानी थे। यह गुण उन्हें पैतृक उत्तराधिकार के रूप में मिला था। माघ की दानशीलता की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि उन्हें राजदरबारों से जो पुरस्कार मिलता था उसे वह घर आते समय रास्ते में ही अपने प्रशंसकों तथा निर्धनों को बाँट देते थे। एक बार उनकी स्त्री ने उनकी इस आदत पर एतराज़ किया तो माघ ने एक श्लोक बना कर उसे अपनी स्त्री के हाथ राजदरबार भेजा, स्वयं न गए। कविपत्नी का सम्मान राजा ने द्विगुण भावसे किया और पुरस्कार भी अत्यधिक दिया, लेकिन जब कविपत्नी की शिविका राजपथ पर पहुँचती है तो दोनों ओर खड़े हुए याचक माघ कवि और उनकी पत्नी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। पति के वैभव और यशोगान को सुन कर कवि पत्नी आत्मविभोर हो गई, उसने जो कुछ पुरस्कार पाया उसे तो दे ही दिया किन्तु इतने में उसे सन्तोष न हुआ तो अपने सारे आभूषण भी लुटा दिए।

ऐसी ही कहानियों को लेकर भोज प्रबंध में जोड़ मोड़ कर के राजाभोज की दानशीलता का प्रचार किया गया है जो अप्रामाणिक है। किसी कवि या लेखक के अज्ञात जीवन के परिचय-सूत्र उसकी कृति के अन्तर्गत अवश्य निहित रहतेहैं। माघ के जीवन परिचय, शील-स्वभाव और गुण की खोज शिशुपालवध से की जा सकती है।

माघ ने शिशुपालवध के दूसरे अध्याय के बारहवें श्लोक में 'काशिका' और 'न्यास' इन दो व्याकरण ग्रन्थों की ओर संकेत किया है। काशिकावृत्ति

का रचना काल ६५० ई० माना जाता है और न्यास ग्रन्थ इससे भी प्राचीन इसलिए कहा जा सकता है कि वाण ने (६२० ई०) अपने हर्ष चरित में न्यास ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि माघ की स्थिति ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निश्चित है।

जन्म-स्थान

शिशुपालवध की प्राचीन हस्तलिखित कुछ प्रतियों में प्रत्येक सर्ग के अन्त में" इतिश्री भिन्नमालव वास्तव्य दत्तक सूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपाल वधे महाकाव्ये " यह लिखा हुआ मिला है। कदाचित् शिशुपालवध की पुष्पिका के आधार पर ही श्री प्रभाचन्द्र ने अपने प्रभावकचरित में लिखा है:—

अस्ति गुर्जर देशोऽन्य सज्जराजन्य दुर्जरः।
तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुरं मुखमिवक्षितेः॥
तत्रास्ति हास्तिकश्वीयापहस्तित रिपुव्रजः।
नृप श्रीवर्मलाताख्यः शत्रुमर्मभिदाक्षमः॥

इस श्लोक में 'भिन्न मालव' को श्रीमाल लिखा गया है, सम्भव है बाद में भिन्नमाल नगर श्रीमाल के नाम से विख्यात हुआ हो, क्योंकि माघ से लभभग पाँच सौ वर्ष बाद प्रभावक चरित लिखा गया है। श्रीमाल के निवासी ब्राह्मण आजकल श्रीमाली कहलाते हैं जो गुजरात और राजस्थान में रहते हैं। यह श्रीमाल नगर आजकल राजस्थान और गुजरात की सीमा पर स्थित है। इसमें सन्देह नहीं कि यही भिन्नमाल (श्रीमाल) नगर माघ कवि की जन्मभूमि है। शिशुपालवध में कवि ने रैवतक पर्वत के वर्णन में जो आत्मीयता दिखायी है उससे सिद्ध होता है कि कवि को अपने प्रदेश से अत्यधिक स्नेह था। रैवतक गुर्जर प्रदेश का पर्वत है। आजकल उदयपुर (राजस्थान) से गिरनार (गुजरात) तक जो पर्वत श्रेणी स्थित है वही रैवतक कहलाती रही है।

स्वभाव और चरित्र

यदि हम शिशुपालवध का अध्ययन प्रतीकात्मक शैली द्वारा करते हैं तो हमें उसके वर्णनों से कवि माघ के स्वभाव और चरित्र का यत्किंचित् परिचय मिल जाता है।

सर्ग ११ श्लोक ४७ के अनुसार माघ कवि को माता की ममता प्रचुर मात्रा में मिली हुई जान पड़ती है। शिशुपाल वध के सर्ग ४३ श्लोक ४ से जान पड़ता है

कि उनका विवाह गिरनार पर्वत के आसपास ही कहीं हुआ था । रैवतक पर्वत के वर्णन में कवि ने सर्ग-के-सर्ग लिख डाले साथ ही कृष्ण को अतिथि बना कर रैवतक द्वारा उनका जो स्वागत कराया जाता है वह किसी ससुराल द्वारा ही संभव हो सकता है। शिशुपालवध को प्रथम सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक पढ़ जानेके बाद यह सहज प्रतीत होता है कि महाकवि माघ उस समय के प्रचलित तथा प्राचीन सभी प्रकार केव्याकरणों के पूर्णज्ञाता होने के साथही सांख्य, न्याय, मीमांसाआदि दर्शनों तथा आगम, तंत्रों के विशेषज्ञ और राजनीति, समाजशास्त्र एवं ज्योतिष के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने जो व्यापक परिचयचारुता और विद्वत्ता प्राप्त की थी वह केवल पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण नहीं बल्कि निजी अध्यवसाय भी उसमें सम्मिलित है । शिशुपालवध के ग्यारहवें सर्ग के छठें श्लोक में कवि ने अपनी जिस दिनचर्या का संकेत किया है, निःसन्देह वह हर किसी व्यक्ति को यशस्वी विद्वान् बना सकती है।

माघ के बनाए हुए कई एक फुटकर श्लोक भी मिलते हैं। जिनसे उनके जीवन-सूत्रों के स्रोत ढूंढ़ने में सहायता मिलती है—

बुभुक्षितैः व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न विद्यया केनचिदुधृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ।।

इस श्लोक से माघ कवि के वैयाकरण, कवि, कुलीन और वैभव-सम्पन्न होने के साथ ही एक ऐसी घटना का संकेत मिलता है, जो शायद भुखमरी के रूप में उनके जीवन में घटी हो । बहुत संभव है भोजप्रबंधकार ने इन्हीं सूत्रों या जनश्रुतियों के आधार पर अपना मतलब हल करने के लिए माघ और भोज को एक में मिला दिया हो।

शिशुपालवध के तीसरे सर्ग से लेकर १३ सर्ग तक माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण का अतुल वैभव एवं बन-विहार, जलक्रीड़ा, मधुपान, प्राकृतिक छटा आदि का जो वर्णन किया है उससे उसकी प्रवृत्ति का पूरा परिचय मिलता है। कवि इन विषयोंके वर्णन में अपने प्रस्तुत विषय को भूल-सा जाता है और चौदहवें सर्ग में जा कर उसे सुधि आती है तब भगवान् कृष्ण को युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में सम्मिलित होने के लिए इन्द्रप्रस्थ पहुँचा देता है।

इन वर्णनों से माघ विलासी, वैभवशाली और विनोदप्रिय सिद्ध होता है।

इकत्तीस

व्यक्तित्व और जीवनचर्या

समस्त अलौकिक अलंकारों से अलंकृत शिशुपालवध के छन्दोमय शरीर पर नौरसों की अमृत वर्षा कर उसे प्राणवान और अमर बनाने वाले माघ कवि का व्यक्तित्व अहंता, ऋजुता और उदारता का विचित्र संघात था। शिशुपालवध जहाँ उनका यशःशरीर माना जाता है वहीं वह उनके शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक जीवन की व्याख्या भी है। समस्त ग्रंथ को सम्यक् अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट बोध होता है कि यह महाकाव्य कविवर माघ का प्रतिबिम्ब और उस युग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

ऐसा जान पड़ता है कि कवि में एक ऐसा दुर्निवार अहं था, जिससे विवश हो कर उसे अपने बहुश्रुतत्व, पाण्डित्य और चमत्कारी प्रतिभा का परिचय हठात् देना पड़ा। इसी अहं के वशीभूत होकर उन्होंने किरातार्जुनीयम् की शैली, वृत्ति और शब्दावली का अनुसरण भी संभक्तः किया है। निःसन्देह कवि के हृदय में यह प्रतिक्रिया जगी हुई थी कि किरातार्जुनीयम् की ख्याति और लोकप्रियता को दबाकर शिशुपाल वध अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करे। इसीलिए उन्होंने सादृश्यवाद को अपनाया। कहना न होगा कि कुशल शिल्पी ने भारवि के वस्तु और शिल्प का सादृश्य स्वीकार कर उसमें अपनी मौलिकता और अगाध परिचयचारुता की अमिट छाप लगा दी है।

कवि को सहज उदारता कि वृत्ति विरासत के रूप में अवश्य मिली थी, किन्तु वह रजोगुणी प्रधान प्रवृत्ति थी। यश, प्रतिष्ठा और प्रशस्ति का भूखा कवि जो भी दान देता था उसमें उसकी यशोलिप्सा लिपटी रहती थी। उसमें उतना ही स्वाभिमान, औदार्य रहा जितना मध्यकालीन दरबारी कवि में होना चाहिए। कवि, विद्वान्, वैभवशाली और विशाल परिचयचारुता सम्पन्न होते हुए भी वह जीवन और यश की सीमाओं से बँधा हुआ जान पड़ता है। उसमें भवभूति की सी गर्वोक्ति, कालिदास की सी कमनीय स्वच्छन्दता और वाण की निश्छल आत्माभिव्यक्ति का अभाव-सा मिलता है। उसने अपनी धार्मिक, शास्त्रीय और सामाजिक मान्यताओं को समन्वयवाद की झीनी चादर से लपेटने का भी कहीं कहीं प्रयत्न किया है। यह निश्चित है कि माघ विशुद्ध वैदिक सनातनधर्मी परम्परा में पैदा हुआ और उसी परम्परा का पोषक और अनुगामी रहा फिर भी उसने जैन, बौद्ध मान्यताओं का संरक्षण इसलिए स्वीकार किया कि उन दिनों गुजरात प्रदेश में

अर्हत अनुयायी सामन्त और श्रेष्ठियों का प्राधान्य या बाहुल्य रहा। यशोलिप्सु कवि ने बुद्धि कौशल द्वारा धार्मिक समन्वय स्थापित करने में वही चातुर्य किया जो भारवि के किरातार्जुनीयम् के प्रति किया था।

ऐसा अनुमान होता है कि माघ का सुन्दर, स्वस्थ और आकर्षक शरीर रहा है, शिर पर मोटी शिखा और बेशकीमती आभूषण और वस्त्रों का वह शौकीन रहा। उसके बोलने में वैचित्र्य, शब्दो में वक्रोक्ति, मुस्कराहट में व्यंजना और व्यवहार में कोमलता तथा उदारता रही होगी। शिशुपालवध के आधार पर यह कल्पना सत्य हो सकती है कि माघ का निवासस्थान राजप्रासाद की भाँति सुसज्जित रहा होगा। सभी ऋतुओं में फलने फूलने वाले बृक्षों, लताओं से समन्वित एक वाटिका रही होगी। कवि के पास राजसी वाहन होने के साथ ही उसके क्रीड़ागृह में आमोद-प्रमोद करने वाले सुन्दर पंछी भी पिंजर बद्ध रहे होंगे।

शिशुपालवध पढ़ने से यह अनुमित होता है कि माघ की जीवनचर्या बहुत ही संयत और नियमबद्ध रही होगी। वह प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में काव्य रचना करता रहा होगा, सूर्योदय में स्नान, सन्ध्या पूजन तदनन्तर शास्त्राभ्यास, मध्याह्न में भोजन फिर शयन और तीसरे पहर परिमित काव्यगोष्ठी और चौथे पहर अपनी रचनाओं का परिमार्जन कर सायंसन्ध्या पूजन के पश्चात भोजन और फिर अन्तःपुर में विनोद, घरेलू व्यवस्था करकराकर वह सो जाता रहा होगा।

सामाजिक चेतना

माघ के जीवन काल में हमारे देश की सामाजिक चेतना का स्पष्ट आभास शिशुपालबध से मिलता है। उस समय वर्ण व्यवस्था और वैदिक धर्म का ही प्राधान्य रहा। मांडलीक और गणतंत्र राज्य थे। कृषि, गोपालन और बाणिज्य व्यवस्था उन्नत दशा पर थे। सैन्य संचालन, कूटनीति और राजनैतिक मतभेद भी रहे। सती प्रथा और यज्ञानुष्ठान की प्रतिष्ठा रही। धार्मिक क्षेत्र में समन्वय स्थापित हो रहा था। देश की जनता सुखी और सम्पन्न थी। परम्पराओं की अपेक्षा की जाती रही। इस युग के समाज में 'अलंकृत शैली' का प्रादुर्भाव भारवि ने इसलिए किया कि जनता की अभिरुचि लम्बे चौड़े उपाख्यानों, आख्यानों और कथाओं से हट गई थी, वह 'दिमागी ऐयाशी' की

ओर उन्मुख हो रही थी। भारवि की ही भाँति माघ ने भी युग का प्रतिनिधित्व करते हुए शिशुपालबध में कथा वस्तु को संक्षिप्त कर प्राकृतिक वर्णन ही अधिक किया है। इस शैली में कविता अलंकारों के भार से लदी हुई है। श्लोक के प्रयोग और चित्रकाव्य के प्रदर्शन पाठकों को बौद्धिक श्रम करने के लिए बाध्य करते हैं। माघ ने इस अलंकृत शैली को जितना उत्कृष्ट बनाया है उतना अन्य किसी कवि ने नहीं बनाया।

माघ का महाकाव्य भारतीय साहित्य की धरती में उगा हुआ ऐसा वट वृक्ष है जिसकी शीतलछाया में काव्य के सभी अंग हरे भरे रस स्निग्ध बने रहकर और भारतीय जनता को रस–सिक्त करते रहेंगे।

अपने अनुवाद के सम्बन्ध में :—

राष्ट्रभाषा हिन्दी में शिशुपाल वध जैसे महाकाव्य के अनुवाद का कार्य कितना श्रमसाध्य था, इसका अनुभव मुझे कार्यारम्भ के अनन्तर हुआ। संस्कृत की दो-चार पुस्तकों का अनुवाद कर मुझमें जो उत्साह संचित हुआ था, यदि उसकी पूंजी न होती तो यह कार्य इतनी शीघ्रता में समाप्त न होता। फिर भी इसके अनुवाद में लगभग एक वर्ष का समय लगा ही। कवि के भावों तथा काव्य-प्रसाधनों की रक्षा में ऐंड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ा है। अतएव त्रुटियाँ होना संभव है, जिन्हें अगले संस्करण में दूर करने का यत्न करूँगा।

शिशुपाल बध संस्कृत-साहित्य-रसिकों की पाठ्य-सामग्री है, अतः उनकी सुविधा के लिए मैंने टिप्पणी लगा दी है, आशा है, वह उन्हें पसन्द आएगी। और मेरा यह अनुवाद मूलानुगामी है। पाठकों को, सम्भव है, कहीं कहीं, कुछ खटक हो किन्तु इसके लिए मैं विवशतया क्षन्तव्य हूँ। इस अनुवाद कार्य में मुझे अपने पूर्व पथिक श्री विद्याधरजी विद्यालंकार के अनुवाद से भी सहायता मिली है,किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मैंने उनके अर्थ को अंगीकार किया है। अनुवाद की शैली के सम्बन्ध में मेरा उनसे मतभेद है। उन्होंने जिस प्रकार का अर्थ किया था, उससे हिन्दी अथवा संस्कृत भाषी समाज वालों का अपेक्षित लाभ सम्भव नहीं था। अनेक स्थलों पर उनके अनुवाद में भूलें भी थीं, जिनसे बचने के लिए मैंने भरसक यत्न किया है। फिर भी मैं हृदय से अपने पूर्व पथगामी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

भाई श्री देवदत्त शास्त्री को मैं क्या धन्यवाद दूं, जो चुपचाप मेरे कार्यों को संवार देने में कभी चूक नहीं करते।

अन्त में मैं अपने पाठकों से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि वे इस अनुवाद में जहाँ कहीं कोई त्रुटि देखें, निःसंकोच कृपाभाव से सूचित करने का कष्ट करें। माघ जैसे महाकाव्य के अनुवाद कार्य में त्रुटि का हो जाना सर्वथा संभव है, कोई त्रुटि न हो यही असंभव था।

मकर संक्रान्ति, २००९ **रामप्रताप त्रिपाठी**

प्रयाग

श्रीगणेशाय नमः

श्री माघकविकृत शिशुपालवध महाकाव्य

प्रथम सर्ग

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ॥ १ ॥

अर्थ—लक्ष्मी (रुक्मिणी) के पति, समस्त जगत् के निवास (आधार) भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण, जिस समय) जगत् का नियंत्रण करने के लिए श्रीसम्पन्न वसुदेव के घर निवास कर रहे थे, (उसी समय) एक बार आकाश से नीचे उतरते हुए उन्होंने हिरण्य गर्भ (ब्रह्माण्ड से उत्पन्न होने वाले भगवान् ब्रह्मा) के पुत्र नारद मुनि को देखा।

टिप्पणी—इस पूरे सर्ग में वंशस्थ वृत्त है, जिसका लक्षण है—"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।" अर्थात् जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से वंशस्थ वृत्त होता है। भगवती रुक्मिणी लक्ष्मी की तथा भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार थे। विष्णु पुराण में कहा गया है—"राघवत्वे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।" अर्थात् स्वयं लक्ष्मी जी ही राम के अवतार में सीता और कृष्ण के अवतार में रुक्मिणी होती हैं। इस छंद में अधिक और विरोध नामक अर्थालंकार तथा वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास नामक शब्दालंकार है। महाकवि ने मांगलिक 'श्री' शब्द से अपने ग्रन्थ का आरम्भ कर के वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।

[नारद जी आकाश से धरती पर उतरते हुए किस प्रकार दिखाई पड़ते हैं:—]

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ॥२॥

अर्थ—सूर्य की गति (सदा) तिरछी होती है, और अग्नि की गति (सदा से) नीचे से ऊपर जाने वाली प्रसिद्ध है। यह चारों ओर फैला

हुआ तेज क्या है जो (ऊपर आकाश से) नीचे की ओर गिरता चला आरहा है—इस प्रकार के विस्मय में भरे हुए लोगों ने (नारद जी को) देखा। (अर्थात् नगरवासी लोग टकटकी लगाकर ऊपर से उतरनेवाले नारद जी को देखने लगे।)

टिप्पणी—पूर्व में उदित हो कर पश्चिम में अस्त होने वाले सूर्य की गति सदा तिरछी ही रहती है, अग्नि की ज्वाला सदा नीचे से ऊपर की ओर जाती है—यही दो ऐसे तेजस्वी थे, जिनकी ऊपर आकाश में स्थिति हो सकती थी। नारद जी अपनी वीणा के सहारे सभी भुवनों में घूमा करते थे। मुनिवर नारद जी का तेज सूर्य और अग्नि के तेज से व्यतिरिक्त है—इस प्रकार इस छन्द में व्यतिरेक अलंकार है।

[फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने ऊपर से उतरने वाले नारद जी को कैसे पहचाना:—]

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥ ३ ॥

अर्थ—**(संसार के) सब कुछ जानने वाले भगवान श्रीकृष्ण ने पहले उसे (आकाश से नीचे उतरती हुई वस्तु को) कोई 'तेज:पुञ्ज' समझा। इसके बाद कुछ और समीप आजाने पर (हाथ पैर आदि की धुंधली) आकृति देखकर (कोई) शरीरधारी (है—ऐसा) समझा। फिर बाद में (एकदम समीप आ जाने पर) स्पष्ट रूप से (शिर, हाथ पैर आदि) अंगों के अलग-अलग दिखाई पड़ जाने से 'पुरुष' समझा—इस क्रम से भगवान् ने उसको (उस तेजस्वी वस्तु को) नारद जी (आ रहे) हैं—यह जाना।**

टिप्पणी—इस छन्द में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है।

[नीचे के सात श्लोकों द्वारा मुनि का वर्णन किया गया है:—]

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शंभुना ॥ ४ ॥

अर्थ—(कैसे थे, वह नारद जी) नवीन और विस्तृत काले-काले बादलों के नीचे वे कपूर के चूर्ण की ढेर की भाँति अत्यन्त गौर वर्ण के दिखाई पड़ रहे थे। उस समय (काले-काले बादलों के अत्यन्त समीप होने

के समय) क्षण भर के लिए उनकी शोभा ताण्डव नृत्य के समय हाथी का काला चमड़ा पीठ पर ओढ़े हुए एवं शरीर पर श्वेत भस्म लपेटे हुए शंकर जी के समान स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

टिप्पणी—ताण्डव नृत्य के समय शंकर जी हाथी का चमड़ा धारण किये रहते हैं और श्वेत शरीर पर श्वेत भस्म लगाना तो उनका सदा का काम ही है। नृत्य के समय उनका वह हाथी का काला चमड़ा ऊपर की ओर उछला करता है, ठीक उसी प्रकार काले-काले विस्तृत बादलों के अति समीप में गौर वर्ण के नारद जी भी दिखाई पड़ रहे थे।

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् ।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव ॥ ५ ॥

अर्थ—(और कैसे थे, नारद जी) कमल की केसर के समान भूरे रंग की जटा को धारण किये हुए (और स्वयं) शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण के (वे उस समय) बर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी हो जाने के कारण पीली लताओं के गुल्मों को धारण करने वाले हिमालय पर्वत के समान (दिखाई पड़ रहे) थे।

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति ।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम् ॥ ६ ॥

अर्थ—(फिर कैसे थे, नारद जी) पीली मूंज की मेखला (करधनी) धारण किए हुए, धवल कान्ति युक्त वह (नारदजी) काजल के समान काले मृग चर्म को ओढ़े हुए थे। (इस प्रकार उस समय वह) सुवर्ण की मेखला से अपने नीले वस्त्र (धोती) को बांधे हुए बलराम के शरीर का अनुकरण कर रहे थे।

टिप्पणी—पुराणों में बलरामजी को नीलाम्बरधारी बताया गया है। ब्रह्मचारी लोग मूंज की करधनी पहनते हैं। प्राचीनकाल में करधनी पहनने की यह प्रथा बहुत प्रचलित थी, आज भी कहीं-कहीं इसका चलन है। उपमा।

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः ।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव ॥ ७ ॥

अर्थ—गरुड के रोमों की भाँति छोटे-छोटे और सुनहली भूमि में उत्पन्न बल्लरियों के सूत्रों के बने हुए सूक्ष्म सुनहले रंग के यज्ञोपवीत

से सुशोभित और स्वयं हिम के समान गौर वर्ण नारद जी (उस समय) बिजली की चमक से युक्त शरद् ऋतु के विशाल (श्वेत) बादल की भाँति (दिखाई पड़ रहे) थे।

टिप्पणी—नारदजी का यज्ञोपवीत सुनहले रंग की मूंज की रस्सियों से बटा हुआ था, उसके धागों के रेशे गरुड पक्षी के रोएं की भाँति सुनहले भूरे रंग के स्पष्ट हो रहे थे।

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना।
चकासतं चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्॥८॥

अर्थ—सुशोभित कमल दण्ड के खण्ड की भाँति गौर शरीर पर स्वभाव से ही चितकबरे और उज्ज्वल सूक्ष्म रोमावलि से युक्त एक सुन्दर मृगचर्म ओढ़े हुए नारद जी पीठपर पड़ी हुई (चितकबरी और श्वेत रंग की) झूल से सुशोभित इन्द्र वाहन नागराज ऐरावत की भाँति शोभा पा रहे थे।

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलाङ्गुष्ठनखांशुभिन्नया।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया॥९॥

अर्थ—बार-बार वीणा के तारों को बजाने के कारण (लाल) अंगूठे के उज्ज्वल नख की किरणों से मिश्रित होने के कारण आधे अग्रभाग में लगे हुए प्रवाल की तरह स्वच्छ स्फटिक की जपमाला से युक्त नारद जी सुशोभित हो रहे थे।

टिप्पणी—मोक्ष के इच्छुक देवर्षि नारदजी स्फटिक की जपमाला अपने हाथ में लिए हुए थे। 'स्फटिको मोक्षदः परम्'। वीणा के अधिक बजाने के कारण उसके तारों से उनकी उंगलियों-विशेषकर अंगूठे का उज्ज्वल नख रक्तमिश्रित हो रहा था, उसकी रक्तिम किरणें स्वच्छ स्फटिक की माला पर पड़ रही थीं। अतः माला का और आधा अग्रभाग ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो वह प्रवालों से बनी हुई है। स्फटिक की माला के अपने श्वेत गुण को त्याग कर नख की रक्त किरणों के रक्त गुण को स्वीकार करने के कारण इस छन्द में 'तद्गुण' अलंकार है।

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥१०॥

अर्थ—वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन से निकलने वाले श्रुतियों के समूहों एवं षडज आदि

स्वरों से ग्राम (स्वर समूहों से बने हुए षड्ज, मध्यम एव गान्धार) तथा विशेष प्रकार की मूर्च्छनाएँ जिससे स्वतः स्पष्ट हो रही थीं ऐसी अपनी महती नामक वीणा को नारद जी बार-बार देख रहे थे।

टिप्पणी—नारद जी की वीणा का नाम महती था। ऊपर आकाश से वेग से उतरने के कारण वीणा के छिद्रों में वायु के झोंकों के लगने से विचित्र स्वर निकल रहा था। स्वर सात हैं:—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। उनका प्रचलित सांकेतिक रूप स रि ग म प ध नी है। यहाँ स्वरों के ग्राम का अर्थ है स्वरों का समूह। संगीत शास्त्र में कहा गया है:—**यथा कटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि। तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते।** ये ग्राम तीन होते हैं। मूर्च्छनाओं की संख्या इक्कीस होती है। स्वरों के उतार चढाव तथा आरोह-अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं। एक-एक ग्राम की सात-सात मूर्च्छनाएं कुल मिलाकर इक्कीस होती हैं। **सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः।**

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसदः।
समासदत्सादितदैत्यसंपदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः॥११॥

अर्थ—इन्द्रियों से न जानने योग्य ज्ञान के निधान नारद जी, अपने पीछे-पीछे (द्वारकापुरी के ऊपर तक) आने वाले उन आकाशगामी देवताओं (देवों) को, जो प्रणाम कर चुके थे, वापस कर दैत्यों की समृद्धि को विध्वंस करने वाले सुदर्शनचक्र धारी भगवान् (कृष्णचन्द्र) के, देवराज इन्द्र के भवन के समान सुन्दर निवास-स्थान पर आ पहुँचे।

टिप्पणी—देवता लोग द्वारकापुरी के ऊपर तक नारद जी को पहुंचाने आये थे। नारद जी ने उन्हें द्वारका पुरी के ऊपर पहुंच जाने पर वापस कर दिया। उस समय वापस लौटते हुए देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर देवर्षि भगवान् कृष्ण चन्द्र के स्थान पर आ पहुंचें।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में 'नती' 'नती' तथा उत्तरार्द्ध में 'पदः' 'पदम्' इन दो व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास, तथा अन्यत्र वृत्यनुप्रास है। इस प्रकार इन दोनों की संसृष्टि है।

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः॥१२॥

अर्थ—नीचे गिरते हुए सूर्य के समान (परम तेजस्वी) नारद जी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख जब तक (ऊपर आकाश से) पूरी

तरह उतर भी नहीं पाये थे कि तब तक श्रीकृष्णचन्द्र अपने ऊंचे आसन से वेगपूर्वक इस प्रकार उठकर खड़े हो गए मानों ऊंचे पर्वत शिखर से बिजली युक्त मेघ।

टिप्पणी—देवर्षि नारद जी के पैरों के भूमिपर पड़ने से पूर्व ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने आसन से उठकर खड़े हो गए। अपने से बड़े पुरुष के आ जाने पर उठकर खड़ा हो जाना शिष्टाचार है। आचार शास्त्रों में कहा गया है:— **ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।** अर्थात् वृद्धों के सम्मुख आने पर युवक के प्राण ऊपर उठ जाते हैं, पहले ही उठकर अगवानी करने तथा विनयपूर्वक प्रणाम करने से वे पुनः यथास्थित होते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण पीताम्बर ओढ़े हुए थे, इसीलिए पर्वत मे उठनवाले उस श्याम घन की उत्प्रेक्षा कवि ने की है, जिसमें बिजलियां कौंध रही हों। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथंचित्फणिनां गणैरधः।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले ॥१३॥

अर्थ—तदनन्तर (भगवान् श्रीकृष्ण के वेगपूर्वक उठकर खड़े हो जाने के अनन्तर) ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद जी ने भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के सम्मुख उस भूतल पर अपने दोनों पैर रखे, जिसे पाताल में प्रयत्नपूर्वक ऊपर उठाये हुए फिर भी नीचे की ओर नम्र होते हुए फणों पर किसी प्रकार नागों के समूह धारण किए हुए थे।

टिप्पणी—ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद जी के शरीर का भार इतना अधिक था कि उनके धरती पर पैर रखते ही नागों के फण नीचे की ओर झुकने लगे यद्यपि वे प्रयत्न करके उसे ऊपर ही उठाये रखना चाहते थे। तात्पर्य यह कि नारद जी के भूतल पर आ जाने से धरती इतने भार से बोझिल हो गई कि नागों को लोहे के चने चबाने पड़े। अतिशयोक्ति अलंकार।

तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः॥१४॥

अर्थ—आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने पूजा के योग्य देवर्षि नारद जी की अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा की सामग्रियों से विधिवत् पूजा की।

(यही चाहिए भी था क्योंकि) मनीषी सन्त लोग पुण्य न करने वालों के घर प्रेम के साथ पहुँचने की इच्छा करते ही नहीं। (अर्थात् सन्त लोग भी पुण्यात्माओं के घर ही पहुँचते हैं पापियों के नहीं अतः बड़ी कठिनाई से मिलने पर सन्तों की पूजा तो उन्हें करनी ही चाहिए।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार ।

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव ।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरंतनस्तावदभिन्यवीविशत् ॥१५॥

अर्थ—जब तक खड़े हुए हिम तथा कज्जल के पर्वत के समान इन दोनों महापुरुषों को (समीपवर्ती) लोगों ने देखा भी नहीं था कि तब तक पुराण मुनि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से समर्पित किए हुए आसन पर देवर्षि नारद जी को अपने सम्मुख (आदरपूर्वक) बिठा लिया।

टिप्पणी—नारदजी गौर वर्ण के थे तथा श्रीकृष्ण जी श्यामल वर्ण के। कवि ने एक को हिम तथा दूसरे को कज्जल का पर्वत उत्प्रेक्षित किया है। बड़ों को अपने हाथ से आसन देकर बिठाना शिष्टाचार है।

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान्कंसकृषः स विष्टरे ।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥१६॥

अर्थ—बहुत बड़ी महानील मणि के समान शोभासम्पन्न कंस रिपु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सम्मुख ऊंचे आसन पर विराजमान नारद जी सायंकाल में उदयाचल पर आश्रित चन्द्रमा की सुन्दरता को चुरा रहे थे।

टिप्पणी—सायंकाल में उदयाचल पर आश्रित चन्द्रमा की शोभा को चुराने का तात्पर्य यह था कि श्यामल वर्ण के श्रीकृष्ण भगवान् के सम्मुख देवर्षि नारद जी का गौर शरीर विचित्र शोभा पा रहा था। निदर्शना अलंकार।

विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः ।
ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ॥१७॥

अर्थ—यज्ञकर्त्ताओं के प्रिय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न चित्त देवर्षि नारद जी की (विधिवत) पूजाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए (क्यों न हों) महानुभाव लोग श्रेष्ठ पुरुषों को अपनी सेवा द्वारा बार-बार वश में करने की विशेष अभिलाषा करते ही हैं।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः ।
अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीर्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः ॥१८॥

टिप्पणी (भूमण्डल के) समस्त तीर्थों से लाये गए, कमण्डलु से अपने हाथ में लेकर देवर्षि द्वारा छिड़के गये, पाप के समूहों को नाश करने में अति समर्थ जल विन्दुओं को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने नत-मस्तक होकर ग्रहण किया।

टिप्पणी—नारद जी के कमण्डलु में भूमण्डल के समस्त तीर्थों का जो जल था, उसे अपनी हथेली पर रख कर वे मंत्र से भगवान् को अभिषिक्त करने लगे।

स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत ।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुश्रृङ्गस्य तदा तदासनम् ॥१९॥

अर्थ—नूतन मेघ के समान श्यामल वर्ण श्रीकृष्ण भगवान् देवर्षि नारद जी की अनुमति से जिस सुनहले आसन पर बैठे, उस आसन ने उस समय जामुन के फलों से सुशोभित सुमेरु के शिखर की शोभा को जीत लिया।

टिप्पणी—इस श्लोक में उपमा तथा अन्तिम चरण में अनुप्रास अलंकार है। इस प्रकार इन दोनों अलंकारों की संसृष्टि है।

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः २०॥

अर्थ—तपाये हुए सुवर्ण के समान दीप्तिमान वस्त्र (पीताम्बर) से अलंकृत तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा के कलंक के समान श्यामल वर्णवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र (उस समय) वाडवाग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त समुद्र की भाँति सुशोभित हुए।

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे ।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः ॥२१॥

अर्थ—चक्रपाणि भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की कान्ति से मिली हुई देवर्षि नारद के शरीर की कान्ति, रात्रि में वृक्षों के हिलते-डुलते पत्तों के भीतर से दिखाई पड़ती चन्द्रमा की किरणों की भाँति सुशोभित हुई।

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः ।
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः ॥२२॥

अर्थ—खिले हुए तामाल के फूलों के समान श्यामल वर्ण तथा सप्तपर्ण के फूलों के पराग के समान शुभ्र (पीत) वर्ण के मांगलिक शरीर की किरणों से परस्पर रञ्जित कान्ति वाले भगवान् श्रीकृष्ण तथा देवर्षि नारद जी मानों उस समय एक वर्ण के हो गये ।

टिप्पणी—भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की कान्ति तमाल (आबनूस) के फूलों के समान श्यामल वर्ण की थी तथा देवर्षि नारद जी सप्तपर्ण (छितवन) के पुष्प-पराग की भाँति पीले (गोरे) वर्ण के थे। आमने-सामने बैठे हुए उन दोनों के शरीर की आभा एक दूसरे में इस प्रकार मिल गयी कि वे एक वर्ण के से हो गए। उत्प्रेक्षा अलंकार।

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥२३॥

अर्थ—प्रलय काल में समस्त जीव-समूहों को अपने में समेट लेने वाले कैटभशत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के जिस शरीर में निखिल संसार विस्तारपूर्वक स्थित रहता है उनके उसी शरीर में तपोधन देवर्षि नारद के आगमन से उत्पन्न आनन्द नहीं समा सका।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि देवर्षि नारद के आगमन से भगवान् श्रीकृष्ण को इतनी प्रसन्नता हुई कि वे हर्ष से फूल उठे। प्रलयकाल में समस्त संसार एवं उसके जीव-निकाय परमात्मा के शरीर में स्थित हो जाते हैं। इस प्रकार चौदहों भुवनों की स्थिति जिस शरीर में हो जाती है, उसमें देवर्षि के आगमन का आनन्द नहीं समा सका। अतिशयोक्ति अलंकार।

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी ।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत् ॥२४

अर्थ—सूर्य के समान परम तेजस्वी देवर्षि नारद के सम्मुख आनन्द से प्रफुल्ल एवं अधिक शोभायमान दोनों नेत्रों को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्पष्ट ही 'पुण्डरीकाक्ष' (कमल के समान नेत्र वाले) बने हुए थे।

टिप्पणी—सूर्य के सम्मुख कमल का प्रफुल्ल एवं शोभा सम्पन्न होना स्वाभाविक ही है। भगवान् का एक नाम पुण्डरीकाक्ष भी है। उस समय वह

स्पष्ट ही पुण्डरीकाक्ष हो रहे थे। पदार्थहेतुक काव्यलिंग तथा उपमा के अंगागिभाव का संकर।

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः २५

अर्थ—तदनन्तर (दोनों महापुरुषों के अपने-अपने आसनों पर विराजमान हो जाने के अनन्तर) अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण चारों ओर प्रकाश बिखरनेवाली, अपने दांतों की पंक्तियों के बहाने (रूपी) चन्द्रमा की किरणों से, देवर्षि नारद के (उज्ज्वल) राजमहल के समान अत्यन्त गोरे शरीर को और अधिक धवल करते हुए, निर्मल मुसकराहट से युक्त वचन इस प्रकार बोले।

टिप्पणी—देवर्षि नारद का भव्य गोर शरीर भव्य प्रासाद था तथा भगवान् श्रीकृष्ण की दन्तपंक्तियाँ चन्द्रमा की किरणें थीं। तात्पर्य यह कि हंसते हुए भगवान् श्रीकृष्ण के दांतों की किरणों से नारदजी का गोरा शरीर और भी देदीप्त हो गया। उपमा और अतिशयोक्ति अलंकार की संसृष्टि।

हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥२६

अर्थ—(भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवर्षि!) आपका दर्शन शरीरधारियों के तीनों कालों (भूत, वर्तमान् और भविष्य) की पवित्रता की सूचना देता है। क्योंकि सम्प्रति (दर्शन काल) में तो वह पापों को नष्ट करता है, भविष्य के कल्याण का कारण होता है तथा पूर्वकाल में किए गए सुकृतों का परिणाम होता है।

टिप्पणी—अर्थात् बिना सुकृत किए पुण्यात्माओं का दर्शन मिलने वाला नहीं है, वर्तमान में पापों का नाश करता है तथा भविष्य के मंगल की सूचना देता है। इस प्रकार जो व्यक्ति तीनों कालों में पवित्र कर्मों वाला होता है, उसे ही आप जैसे का दर्शन मिलता है। वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार।

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥२७॥

अर्थ—संसार में जिसकी सहस्रों किरणों को नापा नहीं जा सकता—उस सूर्य से भी जो अन्धकार (अज्ञान) दूर नहीं किया जा सकता,

आपने उसी सबसे अधिक बलवान अन्धकार (अज्ञानान्धकार) का अपने असंख्य तेजों से बलपूर्वक नाश कर दिया है।

टिप्पणी—सूर्य केवल भौमिक अन्धकार को दूर कर सकता है, अज्ञान को दूर करने की क्षमता तो देवर्षि के तेज में ही है। व्यतिरेक अलंकार।

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव ॥२८॥

अर्थ—प्रजा वर्ग (पुत्र) के कल्याण करने वाले एवं सुयोग्य पात्र (लोहे के बने हुए कड़ाह आदि) में रखने से निश्चिन्त प्रजापति (पुत्रवान) द्वारा तुम धन सम्पत्तियों की भाँति, सर्वदा उपयोग करते रहने पर भी श्रुतियों के अक्षय निधि (धरोहर अथवा भण्डार) बनाये गये हो।

टिप्पणी—जिस प्रकार अपनी सन्तति का शुभचिन्तक पिता उनके भविष्य के उपयोग के लिए बहुत-सी धन-सम्पत्ति एकत्र करके लोहे की तिजोरियों अथवा कड़ाहों में रखकर निश्चिन्त रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस धन के रहने के कारण सर्वदा उचित व्यय (उपयोग) करने पर भी जैसे वह धन नहीं चुकता, उसी प्रकार निखिल विश्व की प्रजा के मंगलकारी भगवान् ब्रह्मा ने आपको (नारद जी को) श्रुतियों का निधि बनाया है। आप जैसे सुयोग्य पात्र में वेदों की अमूल्य निधि को सौंप कर वे बिलकुल निश्चिन्त हो गये हैं। इस प्रकार आप श्रुतियों के अक्षय निधि हैं, और सर्वदा घूम-घूम कर उपदेश देने पर भी आपकी वह ज्ञाननिधि समाप्त नहीं होती। ऐसे वेदनिधि देवर्षि का दर्शन किसके लिए मंगलकारी न होगा? श्लेष अलंकार।

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥२९॥

अर्थ—हे मुनि! यद्यपि पाप को दूर करने वाले आपके इस दर्शन से ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, तथापि मैं आपकी प्रयोजनवती वाणी सुनने का (बहुत ही) इच्छुक हूँ, क्योंकि अपने कल्याण से कौन तृप्त होता है?

टिप्पणी—अपने कल्याण से कभी कोई सन्तुष्ट नहीं होता। अधिक से अधिक कल्याण-प्राप्ति की सबको इच्छा बनी रहती है। दर्शन लाभ से कृतकृत्य होने पर भी मैं आपकी प्रयोजनवती वाणी सुनकर और भी कल्याण-भाजन बनूंगा।

[इस प्रकार की प्रिय बातों के कहने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अब देवर्षि नारद के आगमन के सम्बन्ध में सविनय पूछते हैं—]

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥३०॥

अर्थ—आप संसार से विरक्त हैं, तब भी अपने (यहाँ) आगमन का कारण बतायें—यह कहने के लिए मुझे जो धृष्टता उद्यत कर रही है उस धृष्टता को हमारे गौरव को प्रकट करने वाला आपका यह प्रशंसनीय शुभागमन ही और विस्तृत कर रहा है।

टिप्पणी—कितनी वाक्‌चातुरी तथा शिष्टता इस छन्द में भरी हुई है। विरक्त नारद जी के द्वारका आगमन का प्रयोजन पूछना धृष्ठता है, किन्तु उस धृष्ठता को प्रोत्साहन देने वाला स्वयं उन्हीं का आगमन ही है।

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया ।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्यं गुरु योगिनामपि ॥३१॥

अर्थ—इस प्रकार की बातें करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से देवर्षि नारद जी ने कहा—हे पुरुषोत्तम! आपको यह नहीं कहना चाहिए (कि मैं संसार से विरक्त हूँ तो फिर यहाँ कैसे आया? क्योंकि विरक्तों को भी यहाँ आने का प्रयोजन तो पड़ता ही है।) क्योंकि योगियों के भी तो आपही ध्येय अथवा साक्षात्करणीय हैं। इससे बढ़कर उन्हें भी कौन महान्-कार्य है? (अर्थात् कोई नहीं)

टिप्पणी—भगवान् श्रीकृष्ण के प्रश्न का समुचित उत्तर नारद जी ने दिया। योगी संसार से विरक्त भले ही हों, किन्तु अपने परलोक की चिन्ता उन्हें भी रहती ही है, और उस चिन्ता में निरत योगियों के ध्यानगम्य आप ही (भगवान् ही) हैं, अतः इससे बढ़कर मेरे लिए (नारद के लिए) कोई दूसरा महान् कार्य नहीं है, जिसके लिए मैं यहाँ आया हुआ हूँ।

[योगियों के तुम्हीं ध्येय हो, इसका समर्थन करते हैं—]

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥३२॥

अर्थ—सांसारिक विषय-भोगों के प्रति बढ़ा हुआ अनुराग जिसमें बाधक होता है, जिसे लोग निरन्तर अनभ्यस्त होने के कारण अत्यन्त दुर्गम समझते हैं—ऐसे मुक्तिमार्ग को प्राप्त करने वाले मनस्वी पुरुषों

के लिए आप ही वह गन्तव्य स्थान हैं, जहाँ पहुँच कर पुनरागमन की प्राप्ति नहीं होती।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि मोक्ष के इच्छुकों को भी आप ही की शरण में जाना पड़ता है। श्रुति का कथन है—"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।" तथा "न स पुनरावर्तते।" अर्थात् उसी परम पुरुष को प्राप्त कर के ही मृत्यु से छुटकारा मिलता है, इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। और वहाँ पहुँच कर फिर संसार-सागर में लौटना नहीं पड़ता।

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥३३॥

अर्थ—योगी लोग चित्तवृत्तियों को अन्तमुर्खी करके अध्यात्म दृष्टि से किसी प्रकार आपका साक्षात्कार करते हैं। वे आपको (संसार से) उदासीन, महदादि विकारों से पृथक्, त्रिगुणात्मिका (सत्व, रजस् एवं तमस् गुणों से लिप्त) प्रकृति से भिन्न, विज्ञानघन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं। ऐसा पूर्वज्ञ कपिल आदि का कथन है।

[ऊपर के दो श्लोकों में निर्गुण रूप का प्रतिपादन कर प्रस्तुत कार्य में उपयोगी सगुण रूप की प्रशंसा में नीचे के ६ श्लोक कहे गये हैं:—]

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥३४॥

अर्थ—तीनों लोकों की रचना करने वाले शिल्पी (स्वामी) आपही ने (वाराहावतार में) खिलवाड़ ही खिलवाड़ में, नागों के लोक के एकमात्र आवरण इस भूमण्डल को शेषनाग रूपी स्तम्भ के ऊँचे शिरों पर (सहस्रों फणों पर) टिकाया था।

टिप्पणी—इस श्लोक में वराहावतार की चर्चा कर संसार की विपदा को दूर करने की स्मृति नारदजी दिला रहे हैं। बढ़ई आवरण को ऊंचे खम्भों पर टिका देता है, उसी प्रकार तीनों लोकों के निर्माता भगवान् ने इस भूतल को पाताल के ऊपर आवरण बनाकर शेषनाग के सहस्रों फणों के ऊपर टिका दिया है। श्लिष्ट परम्परित रूपक।

अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः ॥३५॥

अर्थ—जिसका कोई भी गुरु नहीं है, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ऐसे पुराण पुरुष आपकी सम्पूर्ण महिमा को कौन जान सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं क्योंकि) मनुष्य योनि में भी जन्म लेकर आप सांसारिक दुःख द्वन्द्वों को दूर करने वाले अपने (अलौकिक ज्ञान आदि) गुणों से देवताओं और असुरों को अपने से नीचा किये रहते हैं।

टिप्पणी—जब मानव हो कर भी आप देवताओं तथा असुरों को नीचा किये रहते हैं तो पुराण पुरुष रूप में आपकी सम्पूर्ण महिमा का पार कौन पा सकता है ? छेकानुप्रास अलंकार ।

लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुरामम्ं किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।
उदूढलोकत्रितयेन सांप्रतं गुरुर्धरित्रीक्रियतेतरां त्वया ॥३६॥

अर्थ—(हे भगवन्!) निश्चय ही अत्यन्त बोझ से स्वयं टूटती हुई इस धरती के भार को हल्का करने के लिए आप स्वर्ग से (इस धरती पर) अवतीर्ण हुए हैं। किन्तु सम्प्रति तो आप (अपनी कुक्षि में जो) तीनों लोकों को धारण किए हुए हैं—इससे उस (धरती) को और भी अधिक गुरु (भारी अथवा पूज्य) बना रहे हैं।

टिप्पणी—अवतार तो धारण किया था धरती के भार को हल्का करने के लिए किन्तु अब उसे और भी भारी बना रहे हो। विरोधाभास अलंकार ।

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि ।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम् ॥३७

अर्थ—अपने तेज से जगत्-द्रोही कंसादि को मारने के लिए यदि आप इस धरती पर न अवतीर्ण हुए होते तो हे ईश्वर ! समाधि लगाने वालों के लिए भी अत्यन्त दुर्गम आप हम जैसे चर्मचक्षुओं के दृष्टि-गोचर क्योंकर होते ? (अर्थात् कभी न होते।)

टिप्पणी—नारद जी के इस कथन का तात्पर्य यही है कि मैं केवल आपके दर्शन के लिए ही यहाँ आया हुआ हूँ।

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वंभर विश्वमीशिषे ।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥३८

अर्थ—हे विश्व के रक्षक ! मदोन्मत्त कंसादि से पीडित इस विश्व की रक्षा करने की सामर्थ्य केवल आपमें है। (क्योंकि) रात्रि के घने

अन्धकार से मलिन आकाश को स्वच्छ करने में समर्थ सूर्य के सिवा (दूसरा) कौन है ? (अर्थात् कोई नहीं ।)

टिप्पणी—प्रतिवस्तूपमा अलंकार ।

करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम् ।
हरे हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥३९॥

अर्थ—हे हरि (सिंह) ! लोग साधारण पशुओं के समान कंस आदि राजाओं के मारने से जो आपकी प्रशंसा करते हैं, वह प्रशंसा हिरण्याक्ष प्रभृति महाबलवान असुर रूपी हाथियों के नाश करने वाले आपका अपमान है ।

टिप्पणी—जिस प्रकार हाथियों का संहार करने वाले सिंह की साधारण पशुओं के मारने की चर्चा से प्रशंसा करना उसका अपमान करना है उसी प्रकार हिरण्याक्ष प्रभृति महान् दुर्दान्त असुरों के मारने वाले भगवान् की यदि कंसादि क्षुद्र राजाओं के वध की चर्चा से प्रशंसा की जाय तो उनका भी अपमान है । श्लिष्ट परम्परित रूपक तथा उपमा का अंगागिभाव संकर ।

[इस प्रकार प्रसंग की चर्चा पर नारद जी पहुँच जाते हैं ।]

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि ।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः ॥४०॥

अर्थ—(हे भगवन् ! यद्यपि) परिश्रम को त्याग कर (परिश्रम की कोई चिन्ता न कर) आप क्रम से इन लोकद्रोहियों को पीसने के लिए स्वयमेव प्रवृत्त हैं, किन्तु फिर भी एकान्त में आपके साथ वार्तालाप करने का लोभी मेरा मन मुझे वाचाल बना रहा है । (अधिक से अधिक बातें करने की प्रेरणा दे रहा है ।)

तदिन्द्रसंदिष्टमुपेन्द्र यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते ।
समस्तकार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विपस्तद्भवता निशम्यताम् ॥४१॥

अर्थ—अतएव हे उपेन्द्र ! निखिल विश्व के कल्याण के लिए देवराज इन्द्र के संदेश की बातें, क्षण भर में जो मैं सुना रहा हूँ, उसे इन्द्र के समस्त कार्यों में अग्रणी होने वाले आप कृपाकर सुनने का कष्ट करें ।

टिप्पणी—पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार ।

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः ।
यमिन्द्रशब्दार्थनिसूदनं हरेर्हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते ॥४२॥

अर्थ—शत्रुओं से उत्पन्न होने वाले भय से सर्वदा मुक्त (परम निर्भीक) सूर्य के समान परम तेजस्वी दिति का पुत्र था, जिसको लोग हरि के 'इन्द्र' इस शब्द तथा नाम को नष्ट करने वाला (अर्थात् हरि के समस्त ऐश्वर्य को नष्ट करने वाला) हिरण्यकशिपु कहते थे।

समत्सरेणासुर इत्युपेयुषा चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम् ।
भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनस्सु येन द्युसदां न्यधीयत ॥४३

अर्थ—दूसरों के कल्याण से द्वेष रखने वाला वह बलवान् हिरण्यकशिपु सर्वप्रथम 'असुर' इस नाम को चिरकाल तक सार्थक करता हुआ देवताओं के चित्त में 'भय' का प्रथम प्रवेश कराने वाला था। (अर्थात् सर्वप्रथम इसी हिरण्यकशिपु को 'असुर' मानकर देवताओं के मन में भय का संचार हुआ था, इसके पूर्व तो वे पूर्ण निर्भय थे।

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरानपास्य तं रागहृताः सिषेविरे ।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः ॥४४॥

अर्थ—लक्ष्मी जब (चारों) से दिशाओं के स्वामी चारों देवताओं (इन्द्र, वरुण, यम और कुवेर) को छोड़कर उसी हिरण्यकशिपु की सेवा में अनुरक्त होकर रहने लगीं (क्योंकि लक्ष्मी तो वीरों की प्रियतमा हैं) तभी से अपकीर्तिकारी 'चंचला' नाम से संसार में उनकी बहुत ही बदनामी हुई।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि हिरण्यकशिपु ने चारों दिशाओं के दिक्पालों की सारी सम्पत्ति अपने अधीन कर ली थी और वह स्वभाव का बहुत ही उद्धत था।

पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां गणैर्यमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे ॥४५

अर्थ—देवताओं ने इसी हिरण्यकशिपु की आशंका से उसी के समय से अपने दिखावटी रण-साधनों को सुसम्पन्न किया (इसके पूर्व किसी असाध्य शत्रु के न रहने के कारण वे केवल शोभामात्र के लिए थे। किन-किन साधनों को कैसा बनाया, उन्होंने अपने

पुरों को (चहारदीवारी और खाई से सुसज्जित कर) दुर्ग बनाया, हथियारों को तेज किया, सेना को शूरवीरों से समन्वित किया तथा कवचों को सुदृढ़ तथा सघन बनाया। (इस प्रकार सर्वप्रथम इसी हिरण्यकशिपु के कारण उन्हें सजग होना पड़ा था।)

स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाशिश्रियदाश्रयः श्रियः ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसंध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ॥४६॥

अर्थ—लक्ष्मी का आश्रय वह हिरण्यकशिपु दूसरे-दूसरे भुवनों में घूमते हुए अपनी इच्छानुसार जिस (किसी) दिशा में जाता था, उसी दिशा को अपने (शिर पर रखे हुए) मुकुट के रत्नों पर हाथ जोड़ते हुए देवगण भी तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करने लगते थे।

टिप्पणी—तीनों सन्ध्या में नमस्कार करने का तात्पर्य यह था कि सन्ध्या वन्दन जैसे नित्यकर्म में भी दिशा के नियमों को छोड़कर हिरण्यकशिपु के आकस्मिक आगमन के भय से देवता लोग उसी दिशा को नमस्कार करने लगते थे, जिस दिशा की ओर उसके भ्रमण की चर्चा उन्हें सुनाई पड़ती थी।

सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया ।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ॥४७॥

अर्थ—हे नृसिंह ! आपने अति विशाल सिंह का शरीर धारण कर, अपनी जटाओं से बादलों को छिन्न-भिन्न करके, उस दैत्य के वक्षस्थल को, नवयौवना कान्ता के कठोर स्तनों से भी टेढ़े हो जाने वाले अपने नखों से, विदीर्ण कर दिया।

टिप्पणी—यहाँ जटाओं से बादलों को छिन्न-भिन्न करने का तात्पर्य यह है कि नृसिंह भगवान् का विशाल स्वरूप इतना ऊँचा था कि उनके कंधे की जटाएँ बादलों को स्पर्श कर रही थीं।

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः ।
स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ॥४८॥

अर्थ—इसके बाद वही हिरण्यकशिपु देवताओं के साथ होने वाले (जीवन भर मचे रहने वाले) रण के गर्व से उत्पन्न भुजाओं की खुजली को मिटाने की इच्छा से रावण नाम का अत्यन्त भयंकर, स्वर्ग की रक्षा का विनाश करने वाला राक्षस हुआ।

[नीचे के अठारह छन्दों में रावण की उद्धतता का वर्णन है:—]

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः ।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ॥४६॥

अर्थ—साहसपूर्ण कामों में अनुराग रखने वाले जिस रावण ने त्रिभुवन के अधीश्वर बनने की इच्छा से, अत्यन्त उत्साह के साथ अपना दसवाँ मस्तक काटने को उद्यत होकर अपनी इच्छा के अनुसार मिलनेवाले पिनाकी शिव जी के वरदान को भी विघ्न की तरह माना। (इसके साथ आगे के पांचों श्लोकों के अर्थों में—ऐसा रावण नामक राक्षस हुआ—इतना जोड़ लेना चाहिए)

टिप्पणी—इस छन्द में रावण की परम साहसिकता का परिचय दिया गया है। तात्पर्य यह कि उसे अपने शिरों को काट कर शिवजी के लिए अग्नि में हवन कर देने की इतनी त्वरा थी कि दसवां सिर काटते ही जब शिवजी वरदान देने लगे तो उसे यह अभीष्ट वरदान-प्राप्ति भी विघ्न की तरह ज्ञात हुई। पुराणों की अनेक कथाओं में शिवजी की प्रसन्नता के लिए रावण द्वारा अपने शिरों को काट कर अग्नि में हवन करने की चर्चा आई है। उसी की ओर इस श्लोक में संकेत किया गया है।

समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥५०॥

अर्थ—जिस रावण ने पर्वतराज कैलास को ऊपर उठाकर वर देने वाले शिव जी को, डरती हुई पार्वती के वेगपूर्वक स्वयं उनके कण्ठ में आलिंगन करने के कारण उत्पन्न सुख से समन्वित कर, प्रत्युपकृत किया।

टिप्पणी—अकस्मात् कैलास के हिलने-डुलने से पार्वती अपने स्त्री सुलभ स्वभाव से घबरा कर शिवजी के कण्ठ में दोनों बाहें डाल कर उनसे तुरन्त चिपक गयीं। प्रिय की प्रार्थना के बिना प्रियतमा द्वारा दिया गया ऐसा गाढ़ आलिंगन सबसे अधिक आनन्ददायी होता है। शिवजी को ऐसा आनन्द दे कर रावण ने अपने इस व्यवहार द्वारा उनके वरदान का बदला चुका दिया। एक ओर त्रैलोक्याधिपति का वरदान था तो दूसरी ओर उससे भी बढ़कर सुख था। इन दोनों के इस विनिमय के कारण इस छन्द में परिवृत्ति—अलंकार है।

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ५१

अर्थ—जिस बलवान् रावण ने इन्द्र के साथ विरोध कर बार बार अमरावती पर चढ़ाई की, नन्दन वन को छिन्न-भिन्न कर दिया, सब प्रकार के रत्नों को चुरा लिया तथा देवांगनाओं को छीन लिया। इस प्रकार उसने प्रतिदिन स्वर्गलोक को, उपद्रव मचाकर अस्तव्यस्त बना दिया।

टिप्पणी—'बार बार' विशेषण सभी क्रियाओं के साथ अन्वित होगा। समुच्चय अलंकार।

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ।।५२।।

अर्थ—युद्ध में जिस रावण द्वारा दौड़ाये जाने पर (पीछा किए जाने पर) बल के शत्रु इन्द्र ने न तो (अपने वाहन) ऐरावत (हाथी) के लालापूर्वक मन्द गमन की प्रशंसा की और न अपने उच्चैःश्रवा घोड़े की विविध प्रकार की चालों की प्रशंसा की, उन्होंने तो केवल (उन दोनों के) शीघ्र गमन की ही प्रशंसा की।

टिप्पणी—ऐरावत और उच्चैःश्रवा के शीघ्र गमन को प्रशंसा इसलिए इन्द्र ने की कि यदि वे तेजी से इन्द्र को ले कर रणभूमि से भागे न होते तो रावण उन्हें पकड़ लिए होता।

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः ५३

अर्थ—अस्थिर दृष्टि वाले महेन्द्र ने उलूक की भाँति, सहस्ररश्मि सूर्य के समान परम तेजस्वी जिस रावण के दर्शन की क्षमता न रखकर हिमालय पर्वत के गुफा-गृहों के भीतर पैठकर (भी) डरते हुए अपने दिन बिताया था।

टिप्पणी—जिस प्रकार उलूक सूर्य को ओर न देख सकने के कारण सूर्योदय होते ही गुफाओं में छिप कर डरता हुआ अपने दिन बिताता है, उसी प्रकार महेन्द्र भी रावण की ओर से सशंक हो कर हिमालय की गुफाओं में छिप कर अपने दिन बिताता था। कौशिक शब्द यहाँ श्लिष्ट है, एक का अर्थ है महेन्द्र दूसरे का उलूक।

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाद्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकंधरम् ॥५४॥

अर्थ—विशाल शिला के समान कठोर (रावण के) कण्ठ से टकराने के कारण चारों ओर से जिसमें अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं (किन्तु रावण का जिससे प्रतिघात न हो सका) वह भगवान् विष्णु का पराजय करने में असमर्थ सुदर्शन चक्र, देवताओं के शत्रु एवं सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र स्वामी इस रावण के कंधे पर पहुंच कर कुछ न कर सका (प्रत्युत स्वयं प्रतिहत हो गया ।) ।

विभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः ।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥५५॥

अर्थ—हाथी के समान (पराक्रमशील) इस रावण ने अपने मद से (मद जल) शङ्ख नामक खजाने (साधारण शङ्ख) को तोड़कर उसे अत्यन्त क्षुब्ध (गँदला) कर उसकी गंभीरता (गहराई) को नष्ट कर एवं उसके पुष्पक (फूलों के समूहों) को छीनकर मनुष्यधर्मा कुबेर के मानस (मानसरोवर) को बारम्बार नहीं कँपाया—ऐसा नहीं, किन्तु कँपाया ही ।

टिप्पणी—जिस प्रकार कोई हाथी मस्त हो कर किसी सरोवर में घुसकर उसके शंखों को तोड़-ताड़ कर, जल को गँदला कर, मिट्टी डाल-डालकर उसकी गहराई को कम कर, उसमें विकसित कमल आदि के फूलों को छिन्न-भिन्न कर उसे नहस-नहस कर देता है, उसी प्रकार रावण ने भी अपने बल के गर्व से उन्मत्त हो कर शंख नामक निधि को लूटकर, कुवेर को क्षुब्धकर उसकी गंभीरता को नष्ट कर तथा उसके पुष्पक विमान को छीनकर उसका चित्त कम्पित कर दिया था। श्लेष अलंकार ।

रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः ।
प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे ॥५६॥

अर्थ—रणभूमि में वरुण द्वारा चलाये गए भीषण नागों के पाश, उस रावण के क्रोधपूर्वक किए गए हुँकार से पराङ्मुख होकर भयपूर्वक प्रहर्त्ता (वरुण) के ही कण्ठों में वेग के साथ आकर लिपट गये ।

टिप्पणी—वरुण ने तो रावण के विनाश के लिए भीषण नागों को ही अस्त्र बना कर प्रयुक्त किया था किन्तु इधर रावण के क्रोध भरे हुंकार से वे इतने

भयभीत हो गए कि तुरन्त वापस लौटकर वरुण के ही गले में लिपट गये। विषम अलंकार।

परेतभर्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः।
हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ॥५७॥

अर्थ—इसी रावण द्वारा धनुष बनाने के लिए जिसकी सींगें उखाड़ ली गयी थीं ऐसे यमराज के भैंसे का (यद्यपि सींगें ऊपार कर) भार कम कर दिया था, किन्तु मारे लज्जा के भार से तब भी वह अत्यन्त झुके हुए शिर को दुःख के साथ ऊपर उठाये हुए था।

टिप्पणी—भार के हट जाने पर भी शिर नीचे झुका रहा—इस प्रकार विरोध अलंकार है।

स्पृशन्सशङ्कः समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः।
अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलंचकारास्य वधूरहस्करः ॥५८॥

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु में स्थित रहकर भी सूर्य अपनी संकुचित किरणों के अग्रभाग द्वारा भयपूर्वक स्पर्श करता हुआ इस रावण की स्त्रियों को शीतल पसीने की बूंदरूपी मुक्तावलियों से अलंकृत किया करता था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि ग्रीष्म ऋतु में भी सूर्य रावण के भय से लंका में असह्य रूप में नहीं तपता था। समासोक्ति अलंकार।

कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥५९॥

अर्थ—अपनी सोलहों कलाओं के साथ रावण के भवन को कभी न छोड़ने वाले तथा मानिनी कामिनियों को (कामकेलि के प्रति) उत्कण्ठित करने में परमपटु चन्द्रमा इस परम विलासी रावण के रति-विषयक अनुराग को बढ़ाता हुआ उसका कामकेलि संबंधी मंत्रित्व नहीं करता था—ऐसा नहीं, किन्तु करता ही था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि उसके अन्तःपुर में सदा चन्द्रमा का निवास रहता था। रातें चांदनी रहती थीं, जिससे मानिनियों को भी कामोत्कंठा हुआ करती थी।

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया नूनमनेन मानिना।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥६०॥

अर्थ—इस अहंकारी रावण ने अपनी चतुर विलासिनियों के कर्णाभरण को बनाने के लिए निश्चय ही कभी विनायक गणेश का एक दांत उपार लिया होगा, जो आज तक भी नहीं जम रहा है।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार।

निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥६१॥

अर्थ—अन्तःपुर की रमणियों के वस्त्रों को कँपाने के कारण वायु के स्पष्ट अपराध करने पर भी, उनकी (रमणियों की नग्न) जांघों को देखने के लिए लालायित रावण के प्रिय करने के कारण उसी के द्वारा बिना किसी अपराध के ही बांधे गये देवताओं के समूह अनुकम्पित किये गये।

टिप्पणी—वायु ने यद्यपि अन्तःपुर में प्रविष्ट हो कर स्त्रियों के वस्त्रों को उलट-पुलट कर अक्षम्य अपराध किया था किन्तु इसी उलट-पुलट के कारण रावण की लालायित आंखें रमणियों की नग्न जांघों को देख सकीं थीं, अतः वह वायु पर परम प्रसन्न हुआ और इस प्रकार प्रिय कार्य कर के वायु ने बिना किसी अपराध के कारागार में जकड़े गए देवताओं की मुक्ति रावण से करा ली। एक की चतुराई से बहुतों की प्राण रक्षा हो गई।

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम्।
बभार बाष्पैर्द्विगुणीकृतं तनुस्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः ॥६२॥

अर्थ—उस रावण के समस्त लोक को तिरस्कृत करने वाले अत्यन्त महान् तेज की महिमा से बारम्बार तिरस्कृत होने के कारण दुर्बल अग्नि अपने आन्तरिक दुःख के निःश्वास की भाप से दो गुना अधिक धूममण्डल धारण करता था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि परम तेजस्वी कहा जाने वाला अग्नि भी रावण के सामने निस्तेज हो कर केवल धूम-मण्डल बनाता रह जाता था। अतिशयोक्ति अलंकार।

परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः कुलैर्न भेजे फणिनां भुजंगता ॥६३॥

अर्थ—उग्र स्वभाव वाले उस रावण की सेवा के लिए, दूसरों के मर्म-स्थल (हृदय आदि जीवस्थान तथा कुलाचार आदि) को भिन्न करने

वाले, अपने द्विजिह्वता रूपी दोष (दृष्टि दोष तथा पिशुनता आदि) को छोड़ने वाले सर्पों के कुलों ने सीधी चाल चलकर (ऋजु गति से तथा निष्कपट भाव से चलकर) तथा कान युक्त (आंखों से देखने की अपनी आदत छोड़कर तथा नियन्त्रण में रहकर) बनकर अपनी भुजंगता ही छोड़ दी थी।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि इस रावण के शासन में पड़ कर दुष्टों ने दुष्टता तथा सर्पों ने अपना सर्पत्व गुण भी छोड़ दिया था। समासोक्ति अलंकार।

तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः ।
गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः ॥६४॥

अर्थ—उसके हाथियों के समूहों से घायल होने के कारण गण्ड-स्थल से नष्ट मद जल वाले दिग्गजों ने भाग-भाग कर (दूर) दिशाओं में आश्रय लेकर तथा वहां से फिर कभी न लौट-कर चिरकाल तक के लिए अपने (दिग्गज) नाम को चरितार्थ कर दिया था।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि रावण की सेना के हाथियों के डर से वे हाथी इतने भयभीत हो गए थे कि भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग कर उन्होंने शरण ले ली और चिरकाल तक वहीं रुके रहे, वहां से कभी वापस नहीं हुए अतएव उनका 'दिग्गज' अर्थात् दिशा का हाथी यह स्थायी नाम पड़ गया।

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैर्यथा ।
सचन्दनाम्भःकणकोमलैस्तथा वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ॥६५॥

अर्थ—कामज्वर से सन्तप्त उस रावण का शरीर, देवराज इन्द्र की बंदिनी स्त्रियों के अत्यन्त उष्ण निःश्वास की वायु से जिस प्रकार शीतल होता था, उस प्रकार चन्दन मिश्रित जल के कणों से युक्त होने के कारण मृदुल एवं जल से सिंचित ताड़ के पंखों से की जाती हुई हवा से नहीं शीतल होता था।

टिप्पणी—सन्तप्त का उपचार उष्ण-निःश्वासों से होने के कारण इस छन्द में विषम अलंकार है।

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥६६॥

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु के साथ वर्षा, शरद् ऋतु के साथ हेमन्त तथा शिशिर ऋतु के साथ बसन्त ऋतु आकर सर्वदा कुसुमों की प्रभूत सम्पत्ति लिए हुए, उसकी (रावण) राजधानी में निवास करते थे और उसके कुटुम्बी-से बन गये थे।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि रावण की राजधानी में सदा छहों ऋतु विराजमान रहते थे। एक साथ सभी ऋतुओं के समागम से असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है।

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।
मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः ६७

अर्थ—अमानव, अजन्मा, एवं (राम रूप में) मनु के कुल में उत्पन्न, अत्यन्त प्रभावशाली आपको अपना भविष्य में विनाश करने वाला जानकर भी उस रावण ने जानकी जी को नहीं छोड़ा (ऐसा वह अभिमानी था, सच है) मानी पुरुषों का सदा अभिमान ही एकमात्र धन होता है।

टिप्पणी—मानी पुरुष प्राण-संकट उपस्थित हो जाने पर भी अपने अभिमान को नहीं छोड़ते। कारण से कार्य का समर्थन होने के कारण इस छन्द में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति ६८

अर्थ—दशरथ पुत्र (राम) के रूप में दण्डकारण्य से स्त्री (जानकी) को चुराने वाले, इसी रावण को, (पर्वतों द्वारा सेतु) बांधने से चंचल एवं गंदले जल वाले समुद्र को लाँघकर लंका नगरी के समीप आपने मारा था—क्या इस बात को आप स्मरण कर रहे हैं?

अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।
तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते संप्रति सोऽप्यसः परैः ६९

अर्थ—राक्षस शरीर छोड़ने के अनन्तर (इस समय) दूसरों को छलने में तत्पर यह रावण नट के रूपान्तर की भाँति दूसरे जन्म को धारण कर एवं अपने पूर्व स्वरूप को छिपाकर शिशुपाल नाम से, रावण होने पर भी, दूसरों की दृष्टि में, वह नहीं यह कोई दूसरा है—ऐसा प्रतीत हो रहा है।

टिप्पणी—जिस प्रकार नाटक में भाग लेनेवाला नट विविध रूप धारण कर नई-नई वेशभूषा तथा बोल चाल से लोगों को भ्रम में डाल देता है कि 'यह वह नहीं है' उसी प्रकार यह शिशुपाल भी यद्यपि रावण ही है फिर भी लोग 'यह रावण नहीं है'—ऐसा समझते हैं।

[आगे के तीन श्लोकों में शिशुपाल की चर्चा की गयी है।]

स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं संप्रति तेजसा रविः ॥७०॥

अर्थ—यह शिशुपाल शरीर से बालपन में (विष्णु भगवान की भाँति) चार भुजाओं वाला मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान एवं (शंकर की भाँति) तीन नेत्रों वाला था। इस समय जवान होकर यह अपने (बलवान्) करों (हाथों तथा किरणों) से राजाओं (पक्षान्तर में पर्वतों) को आक्रान्त कर अपने महान् तेज से निस्सन्देह सूर्य के समान (दिखाई पड़ रहा) है।

टिप्पणी—करों से महीभृत को आक्रान्त कर के—इसमें श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार है तथा पूर्व पद में उपमा है। विष्णु, शंकर, चन्द्रमा तथा सूर्य के समान उपमित करने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि देखने में वह बहुत ही सौम्य तथा तेजस्वी है, किन्तु स्वभाव से अति दुर्धर्ष है।

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया।
दशाननादीनभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ ॥७१॥

अर्थ—अपनी इच्छा से ही यह शिशुपाल देवताओं, दैत्यों तथा राक्षसों पर प्रसन्नता तथा क्रूरता का विधाता है एवं इसी कारण से (यह) आराधित (महादेव आदि) देवताओं के वरदान से अत्यन्त पराक्रम प्राप्त करने वाले दशानन आदि का परिहास करता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह कि रावणादि की भाँति इसने किसी देवता का वरदान नहीं प्राप्त किया है, स्वयं अपने पराक्रम से ही देवताओं, दैत्यों तथा राक्षसों पर जब चाहे कृपा करता है, जब चाहे दण्ड-विधान करता है। यही कारण है कि यह उन रावणादि का उपहास करता है, जो महादेव आदि की कृपा से ऐश्वर्यवान् बने थे।

बलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥७२॥

अर्थ—विजयाभिलाषी यह शिशुपाल अपने पूर्वजन्मों के अनुसार इस जन्म में भी अपने पराक्रम के अभिमान से जगत् को उत्पीडित कर रहा है (ऐसा क्यों न हो) सती स्त्री की भाँति मनुष्य की अत्यन्त स्थिर प्रकृति दूसरे जन्म में भी उसे प्राप्त होती ही है।

टिप्पणी—मनु का कथन है:—

पतिं या नाभिचरति मनोवाक्काय संयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥

अर्थात् जो साध्वी स्त्री मन-वचन और शरीर से पति को कभी अप्रसन्न नहीं करती वह जन्मान्तर में भी पति का लोक (सान्निध्य) प्राप्त करती है—ऐसा सत्पुरुषों का कथन है। अर्थान्तरन्यास अलंकार।

तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो निपातनीया हि सतामसाधवः॥७३॥

अर्थ—अतएव विधाता की भी आज्ञा को उल्लंघित करने वाले इस शिशुपाल को आप यमराज के भवन का अतिथि बनाइए, क्योंकि (अपने ही) अनाचारों के कारण आपदाएँ जिनपर स्वयं आकर पक रही हों—ऐसे असज्जनों का विनाश करना सत्पुरुषों का कर्तव्य है।

टिप्पणी—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।
घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्॥७४॥

अर्थ—शत्रु-नाश के कारण जिसमें दृढ़ता उत्पन्न हो गयी है ऐसा इन्द्र का वक्षस्थल फिर से घनी पुलकावली से युक्त इन्द्राणी के दोनों स्तनों के अग्रभाग के साथ, उत्सुकतापूर्वक किये गए गाढ आलिंगन के पीड़न को सहने योग्य बन जाय।

टिप्पणी—इस छन्द में पदार्थहेतुक काव्यलिंग, संबंध में असंबंध रूप अतिशयोक्ति अर्थालंकार तथा वृत्यनुप्रास नामक शब्दालंकार है। यह पुष्पिताग्रा वृत्त है, जिसका लक्षण है "अयुजि नयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" अर्थात् विषम चरणों में क्रम से दो नगण, एक रगण तथा एक यगण और सम चरणों में एक नगण दो जगण तथा एक रगण और एक गुरु वर्ण हो।

ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ-
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।

शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥७५॥

अर्थ--इस प्रकार (उपर्युक्त) बातें कह आकाश की ओर उठ जाने पर जब (श्रीकृष्ण भगवान् के) सम्मुख देवर्षि नारद का मुख चन्द्रमा की शोभा धारण करने लगा तब 'ऐसा ही होगा' कह कर नारद की बात को अंगीकार करने वाले एवं शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण के गगनमण्डल की भाँति (नीले) मुख मण्डल पर सर्वदा शत्रुओं के विनाश की सूचना देने वाले केतु ने कुटिल भ्रुकुटि के बहाने से अपना स्थान बना लिया।

टिप्पणी—इस छन्द में अनेक काव्य सौन्दर्य हैं। इसमें वीर रस और उसके सहकारी रौद्र रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। 'चन्द्रमा की शोभा धारण करने लगा' इसमें निदर्शनालंकार है। गगन मण्डल की भाँति मुख मण्डल पर—इसमें उपमा है। भ्रुकुटि के बहाने से केतु उदय हुआ—इसमें अपह्नव है। इस प्रकार इन सब के अंगागिभाव का संकर है। चमत्कार के लिए तथा मंगलाचरण की दृष्टि से सर्ग के इस अंतिम श्लोक में भी आदिम श्लोक की भाँति मांगलिक 'श्री' शब्द का प्रयोग है। महाभाष्यकार पतंजलि ने आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण की प्रशंसा करते हुए कहा है—मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते, वीर पुरुषाण्यायुष्मत् पुरुषाणि च भवन्ति अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति। अर्थात् जिस शास्त्र या ग्रन्थ में आदि,मध्य और अन्त—तीनों स्थलों पर मंगलाचरण किया जाता है, उसकी प्रशंसा होती है, उसके निर्माता तथा अध्येता दोनों ही वीर (नीरोग) दीर्घायु तथा प्रवक्ता होते हैं। यह छन्द शार्दूलविक्रीडित है, जिसका लक्षण है—'सूर्याश्वैर्मसजस् ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्। सर्ग के अन्त में भिन्न छन्द रखने की रीति काव्य में प्रशस्त मानी गयी है। दण्डी ने कहा है—सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसंधिभिः। सर्वत्र भिन्न-सर्गान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम्।

श्री माघ कवि कृत शिशुपाल वध महाकाव्य में कृष्णनारद सम्भाषण नामक प्रथम सर्ग समाप्त।

— ० —